जागोरी की पत्रिका
जनवरी–सितम्बर 2013

हम सबला

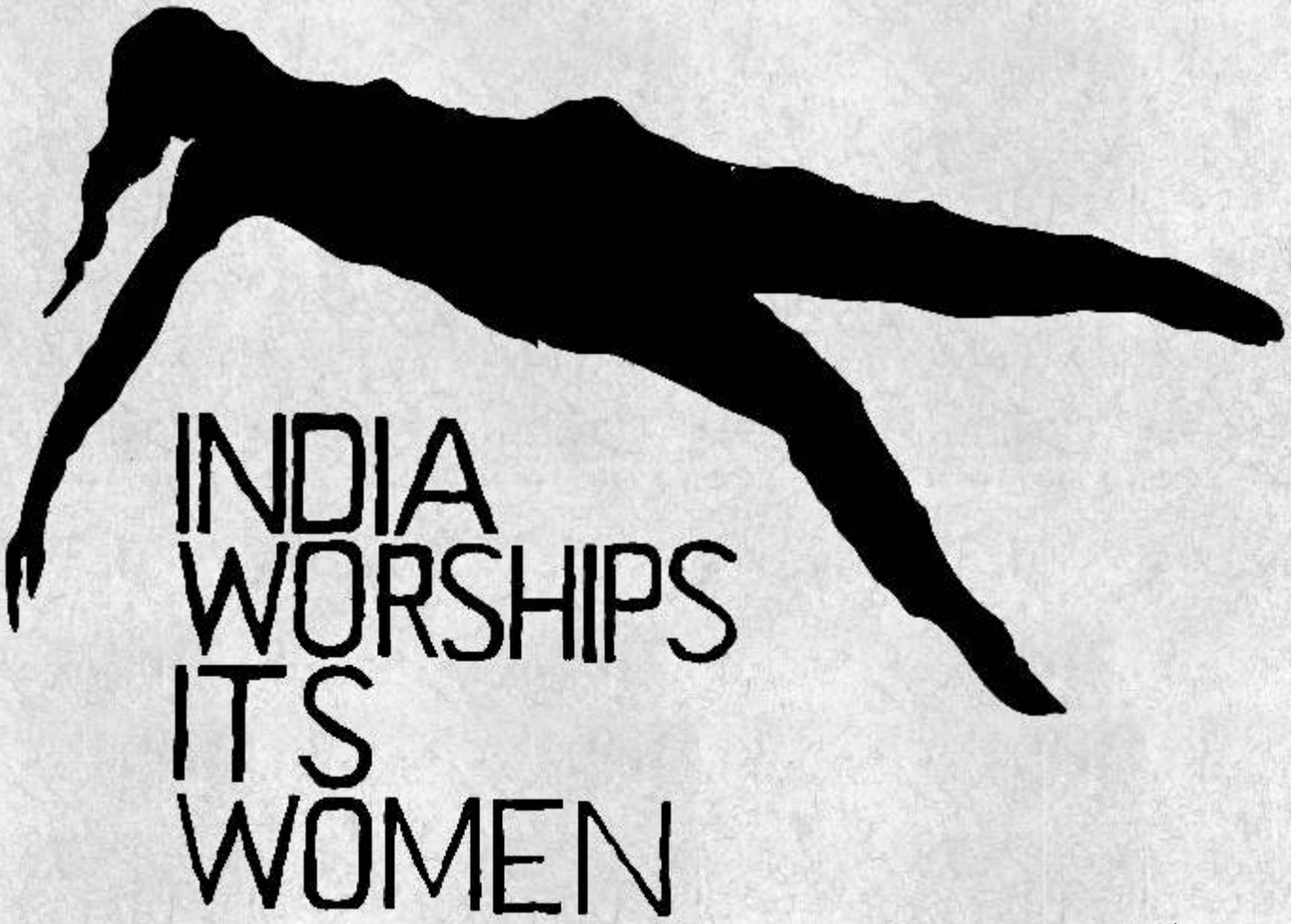

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

इस अंक में
महिलाओं व बच्चों
के साथ यौन हिंसा

हम सबला

जनवरी-सितम्बर 2013

इस अंक में

अतिथि संपादक
निलांजू दत्ता

संपादन एवं अनुवाद
जुही जैन

संपादन सहयोग
जया श्रीवास्तव
अनामिका
वीणा शिवपुरी
सीमा श्रीवास्तव
गीता नम्बीशन

विशेष सहयोग
सुनीता धर

अनुवाद सहयोग
वीणा शिवपुरी, सुनीता ठाकुर

मुख पृष्ठ
"इण्डिया वर्शिप्स इट्स विमेन" -चंद्रलेखा
साभार- *द चंद्रलेखा आर्काइव्ज़- स्पेसिस,* चेन्नई

पिछला कवर
पेंटिगः गुरशरन सिंह
'हमारी बेटियां इंसाफ़ की तलाश में'
पुस्तक कवर, जागोरी प्रकाशन से साभार

रेखाचित्र
प्रशांत ए.वी.

सज्जा व मुद्रणः सिस्टम्स विज़न
systemsvision@gmail.com

डिस्क्लेमरः इस प्रकाशन में शामिल लेखों में व्यक्त विचार और मत लेखकों के निजी हैं और जागोरी की आधिकारिक नीतियों और दृष्टिकोण को अनिवार्य रूप से नहीं दर्शाते। प्रकाशन में शामिल जानकारी के चयन पर अंतिम निर्णय संपादन मंडल को होगा।

दूसरा संस्करणः केवल सीमित वितरण के लिए

बी-114, शिवालिक, नई दिल्ली 110017
ई-मेलः humsabla.patrika@jagori.org
वेबसाइटः www.jagori.org
दूरभाषः 26691219, 26691220
हेल्पलाइनः 26692700

हमारी बात — निलांजू दत्ता — 1

लेख

हिंसा व महिला सशक्तिकरण...	विभूति पटेल	3
मथुरा से भंवरी तक	लक्ष्मी मूर्ति	6
बलात्कार के बाद का सफ़र	निशा सूज़न	10
मर्दों का इससे क्या लेना देना?	राहुल रॉय	15
पितृसत्तात्मक नियंत्रण रेखा का विरोध	कविता कृष्णन	25
आज बारिश कल मूसलाधार	रूरी स्यालेन्द्रावती	30
सहमति से यौन संबंध बनाने की आयु सीमा बढ़ाने का फैसलाः एक समीक्षा	साहिल अरोड़ा/ चितवन दीप सिंह	57

कविता

निर्भया के लिए	जुही	2
फालतू/काजल/टूटी-बिखरी और पिटी हुई	अनामिका	5/56/67
चिड़िया	सुनीता ठाकुर	24
दरवाज़ा	सुधा अरोड़ा	33
सवारा/इस जबरन लिख दिए गए को ही...	पवन करण	42/55
मैं बच गई मां	ज़ेहरा निगाह	48

संवाद

बलात्कार और क़ानून	सुनीता ठाकुर	23
आख़िरकार अभिव्यक्ति का अधिकार है किसका?	मृणाल पाण्डे	28
बच्चों पर विश्वास करना ज़रूरी है...	जुही जैन	52
पुलिस की नज़र में बच्चे ही दोषी	शिवम विज	71

कहानी

लड़कियां	मृणाल पाण्डे	20
दावणी	बामा	61

आमने-सामने

समय है स्त्रीद्वेषी सोच से जूझने का	कल्पना शर्मा	32
सिर्फ़ क़ानून बनाना काफ़ी नहीं	मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने	65
बच्चों की सुरक्षा, हम सबकी ज़िम्मेदारी	किशोर झा	68

अभियान

उठो, नाचो, विरोध करोः उमड़ते सौ करोड़...	पामेला फिलिपोज़	34
यौन हिंसा व मृत्युदंड विरोधी वक्तव्य		36
रशीदा मांजू का वक्तव्य		39
वर्मा आयोग के सुझाव		41

कानून

आपराधिक क़ानून संशोधन अधिनियम 2013	फ्लेविया एग्निस	43
यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण क़ानून, 2012	फ्लेविया एग्निस	49

आपबीती — सुहेला अब्दुलालि — 13

हमारी बात

हिंसा और हिंसा *के खौफ़ ने लम्बे अर्से से औरतों को दुर्बल बनाया है। इसके कारण करोड़ों औरतें अपने घर और आजीविका को मजबूरीवश छोड़ देती हैं, वे सार्वजनिक जगहों पर जाने से कतराती हैं, सार्वजनिक सेवाओं तक अपनी पहुंच त्याग देती हैं और रूढ़िवादी नियमों, मानदण्डों और कठोर मान्यताओं के अनुसार खुद को ढालने की कोशिश करती हैं। औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा महिला अधिकारों को चोट पहुंचाने वाला एक प्रमुख साधन है जो राज्य, फ़िरकापरस्त पक्षों, समुदाय व परिवारों में उनके दोयम दर्जे को पुनर्स्थापित करने में मदद करता है। यह एक जटिल व स्थाई समस्या है जिसके अनेक कारण हैं जो संस्कृति, नस्ल, भुगोल व धर्म की सीमाओं के पार, हर समाज में व्याप्त हैं।*

महिलाओं के साथ हिंसा स्त्री व पुरुष के बीच असमान सत्ता संबंधों की अभिव्यक्ति है जो समाज के पितृसत्तात्मक ढांचों में गहरे पैठी है। जहां स्त्री व पुरुष दोनों ही हिंसक व पीड़ित हो सकते हैं वही शोध हमें इस सच्चाई से अवगत कराते हैं कि ज़्यादातर औरतें हिंसा का शिकार होती हैं। महिलाओं के अंतरंग संबंधों में होने वाली हिंसा अधिकांश बार उनके जानकार पुरुषों द्वारा घरों व जाने-पहचाने माहौल में की जाती है।

एक तरफ़ हिंसा ने आज कुछ नए रूप धारण किए हैं जिसमें वैश्विक अर्थव्यवस्था, नई उदार आर्थिक नीतियों और गरीब विरोधी नीतियों के प्रभाव से बढ़त देखी गई है। दूसरी ओर महिला अधिकारों के क़ानूनी ढांचों में नए क़ानून-सूचना का अधिकार, घरेलू हिंसा, यौन हिंसा, विरासत के अधिकार सूत्रबद्ध किए गए हैं। पर इन क़ानूनों को लागू करने वाले तरीके अभी भी पितृसत्तात्मक नियमों से बंधे हैं और जिन्हें सत्ताधारी वर्ग व जाति के हित, जो महिलाओं की कमतरी के पक्षधर हैं, नियंत्रित करते हैं।

घरेलू हिंसा, बलात्कार, सम्मान जनित हत्या, बाल यौन हिंसा के मामलों में न्यायिक संरचनाएं भी इन विचारों से अछूती नहीं हैं और अक्सर निजी क्षेत्र की मर्यादा को वैधता प्रदान करने वाली पितृसत्तात्मक सीमाओं को पुनर्स्थापित करती हैं। जाति पंचायतों के आदेशों का उल्लंघन करने वाले दम्पति के ख़िलाफ़ कार्रवाई, हाशियाबद्ध अल्पसंख्यकों के विरूद्ध हिंसा को बढ़ावा देने वाला मीडिया, समलैंगिक महिलाओं और अवहेलना करने वाली पत्नी-बेटी को सज़ा देने वाली पारिवारिक गतिविधियों में आम जनता की मूक सहमति तथा घरेलू हिंसा का विरोध करने वाली औरतों के ख़िलाफ़ खड़ा समुदाय— सब इस पितृसत्तात्मक सत्ता को समर्थन देते हुए ग़रीबी, भूख और आवासहीनता के स्त्रीकरण को भी पुनर्स्थापित करते हैं। इसके नतीजतन मानव अधिकारों व आजीविका को ख़तरा पहुंचता है जो समाज में समानता और पूर्णता से औरतों की शिरकत में रुकावट पैदा करता है।

इस सच के अलावा एक सच और भी है। हाल ही में भारत में घटी हिंसा की कुछ घृणित घटनाओं ने दुनिया भर का ध्यान हमारी ओर खींचा है। इन घटनाओं के ख़िलाफ़ देश में हुए सतत और व्यापक सार्वजनिक विरोधों ने इस ओर संकेत किया है कि महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा का मुद्दा निर्णयकर्ताओं की झोली में काफी लम्बे अर्से तक रहने के बावजूद अदृश्य बना रहा है और इस पर अधिक तवज्जो देने की ज़रूरत है। हालांकि यह कोई नया मुद्दा नहीं है फिर भी इस मुद्दे पर केंद्रित वैश्विक तवज्जो ने महिलाओं के लिए एक हिंसा मुक्त, सुरक्षित देश और विश्व बनाने की ज़रूरत पर ज़ोर दिया है।

अभी तक महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा से निपटने के लिए एक पूरी तरह समन्वित कार्यनीति की कमी के कारण इस पर प्रतिकार के मायने हिंसा को होने से रोकने के बजाय "नुकसान-भरपाई" तथा संकटकालीन आपराधिक न्याय प्रतिक्रिया पर ही केंद्रित होकर रह गए हैं। अब हमें यह समझना होगा कि औरतों के विरूद्ध हिंसा के बचाव व रोकथाम के लिए गहरे सांस्कृतिक व सामाजिक बदलावों की ज़रूरत पड़ती है और संस्कृति को बदलने के लिए ज़रूरी है कि हम औरतों के

प्रति अपने रवैयों की ज़िम्मेदारी लें। हमें यह भी स्वीकारना होगा कि इस तरह की मानसिकता और सोच को बदलने में एक लम्बा या शायद एक पूरी पीढ़ी का समय लग सकता है।

महिला हिंसा पर जागरूकता फैलाने और औरतों के मानवाधिकारों की सुरक्षा के साथ-साथ हमें पुरुषों व लड़कों के साथ साझेदारी भी बनानी होगी। उन्हें यह सिखाना होगा कि औरतें समाज और जीवन में उनकी समान साथी की हैसियत रखती हैं। इसी के साथ हमें मर्दाने व्यवहार से जुड़े मानकों, जो अपना पौरुष साबित करने के लिए औरतों की अधीनता को जायज़ ठहराते हैं, को भी चुनौती देनी होगी। हिंसा को खत्म करने के प्रयासों से पुरुषों व लड़कों को अलग रखने से पुरुष हिंसा से जुड़े लैंगिक मानक पुनर्स्थापित होते हैं और हिंसा को संबोधित करने की पूरी ज़िम्मेदारी औरतों के कंधों पर आ जाती है। पुरुषों को साथ जोड़ने का एक फ़ायदा यह होता है कि वे खुद एक समान व स्वास्थ्य रवैये वाली मर्दानी पहचान का उदाहरण दूसरे पुरुषों को दे सकते हैं। इसलिए आज हमें पहले से भी ज़्यादा पुरुषों को साथ लेकर चलने की ज़रूरत है।

महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा को खत्म करने के लिए स्थानीय स्तर पर काम करना भी ज़रूरी है, हालांकि इसमें बदलाव क्षमताएं सीमित और हाशिए पर ही पाई जाती हैं। महिलाओं की पहचान अभी भी बतौर एक प्रभावकारी राजनैतिक समूह बनना बाकी है। महिलाओं की सशक्तता को सच बनाने के लिए एक सशक्त राजनैतिक विषय के साथ-साथ एक सामूहिक राजनैतिक संगठन भी बहुत ज़रूरी है। स्थानीय व क्षेत्रीय स्तर पर महिलाओं के संगठनों और मंचों की ज़रूरत को भी हमें स्वीकारना होगा। पर प्रमुख प्रश्न यह है कि इन सभी संस्थानों को एक परिवर्तनशील, नारीवादी राजनीति के लिए कारगर कैसे बनाया जाए जिससे स्थानीय संघर्ष, समुदाय व जातीय राजनीति की चुनौतियों का सामना करते हुए लैगिंक हितों को भी ध्यान में रख सकें।

आज महिलाओं के दावों को नज़रअंदाज़ करना मुमकिन नहीं है। महिलाओं के प्रति हिंसा को एक वैश्विक मानवाधिकार मुद्दा मान लिया गया है जो महिलाओं के स्वास्थ्य व खुशहाली को प्रभावित करता है। इस हिंसा को जड़ से मिटाने की ज़िम्मेदारी सभी सरकारों की भी है। राज्य के हस्तक्षेप में सरकारी नीतियों का कार्यान्वियन, प्रचार व जवाबदेही शामिल होनी चाहिए जिससे कार्रवाइयों और सेवाओं का एक स्थानीय, प्रादेशिक व केन्द्रीय ताना-बाना स्थापित किया जा सके। इस नेटवर्क में क़ानूनी व सामाजिक सहायता, स्वास्थ्य सेवाएं, सार्वजनिक सुरक्षा, शिक्षा व श्रम निकाय भी शामिल किए जाने चाहिए।

फ़रवरी 2008 को "युनाइट अभियान" की शुरूआत के अवसर पर अपने वक्तत्व में संयुक्त राष्ट्र की सचिव, बन किमून ने कहा— "महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा से निपटने के लिए कोई एक व्यापक कार्यनीति मौजूद नहीं है। एक देश में काम करने वाला तरीका दूसरे देश में कामयाब रहे यह ज़रूरी नहीं है। हर देश को अपनी कार्यनीति खुद बनानी होगी। पर एक व्यापक सच है जो सभी देशों, संस्कृतियों व समुदायों पर लागू होता है— औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा कभी भी स्वीकार्य, क्षम्य और सहनीय नहीं मानी जा सकती।"

निलांजू दत्ता, *जागोरी की कार्यकर्ता हैं।*

निर्भया के लिए...

मुझे लड़ना नहीं
किसी प्रतीक के लिए
किसी नाम के लिए
किसी संग्राम के लिए
बस लड़नी है एक लड़ाई
टूटे वादों के लिए
बुलंद इरादों के लिए
कुछ हसरतों के लिए
फैली नफ़रतों के लिए
सहमे अरमानों के लिए
अन्यायी फरमानों के लिए
बिखरे ख्वाबों के लिए
उजली राहों के लिए
धड़कते नगमों के लिए
छूटे अपनों के लिए . . .

तुम्हारे हौसले को सलाम
हमारी साथी. . .

जुही

लेख

हिंसा व महिला सशक्तिकरण: एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

विभूति पटेल

मथुरा, एक किशोरी थी जब दो पुलिसवालों ने पुलिस थाने में उसका बलात्कार किया था और थाने के बाहर खड़े उसके रिश्तेदार सहमे से सुबक रहे थे। 1972 में हुई इस घटना की क़ानूनी लड़ाई शुरू हुई जब एक महिला वकील ने घटना के तुरंत बाद इस मामले को अदालत में उठाया। सत्र न्यायालय ने मथुरा के चरित्र पर आरोप लगाया और दोनों पुलिसवालों को बरी कर दिया। उच्च न्यायालय के फ़ैसले में, आरोपियों को साढ़े सात की जेल की सज़ा दी गई जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने उलट दिया। इस फ़ैसले ने देश में बलात्कार-विरोधी अभियान को जन्म दिया, जिसकी मांग थी कि मथुरा बलात्कार केस को दोबारा खोला जाए और बलात्कार क़ानून में संशोधन किया जाए। उस समय के जाने-माने वकीलों ने इस मुद्दे को उठाया, साथ ही राष्ट्रीय और राज्य प्रेस ने भी इस मुद्दे पर खुलकर आवाज़ बुलंद की। नई दिल्ली के महिला समूहों का गठन भी इसी आंदोलन के आसपास हुआ। उन्होंने आम सभाएं और पोस्टर अभियान आयोजित किए, नुक्कड़ नाटक रचे, अपनी मांगों के समर्थन में हज़ारों हस्ताक्षर इकट्ठा किए, रैलियां और प्रदर्शन किए, विधायकों और प्रधानमंत्री को याचिकाएं दीं तथा बलात्कार पीड़ितों के साथ किए जाने वाले व्यवहार के बारे में आम जनता को जागरूक किया। यह अगुवाई मध्यम, शिक्षित और शहरी महिला वर्ग की ओर से हुई। बाद में, राजनैतिक दल और बड़े संगठन भी इस अभियान से जुड़ गये।

बलात्कार क़ानूनों में सुधार

बलात्कार क़ानून में संशोधन की मांग में महिलाओं को यौनिकता की सामाजिक रचना, जिसमें समाज व नागरिक समाज की पूर्वधारणाएं झलकती थीं, से जुड़े मुद्दों को अहमियत दी गई, जैसे बलात्कार पीड़ित का पिछला यौनिक इतिहास, आपराधिक न्याय पद्धति की प्रक्रियाएं, प्रथम सूचना रिपोर्ट, चिकित्सीय परीक्षण, भारत में हिरासत में महिलाओं के अधिकार आदि। नारीवादियों के बीच सक्रिय बहस के बाद यह तय किया गया कि महिला संगठनों की निम्न मांगे होनी चाहिए:

1. महिला के साथ पूछताछ केवल उसके निवास स्थान पर ही की जानी चाहिए।
2. पुलिस अधिकारी द्वारा पूछताछ के दौरान, महिला को अपने साथ कोई पुरुष संबंधी, दोस्त अथवा महिला सामाजिक कार्यकर्ता को रखने की इजाज़त मिलनी चाहिए।
3. हिरासत में रखी गई महिलाओं को महिलाओं के लिए बनाए गए विशेष बंदीगृह में ही रखा जाना चाहिए। अगर ऐसा कोई लॉक-अप न हो तो महिलाओं को बच्चों अथवा महिलाओं के संरक्षण व कल्याण के लिए बनाए गए केन्द्रों में ही रखा जाना चाहिए।
4. बलात्कार पीड़ित की मेडिकल रिपोर्ट में दिए जाने वाले निष्कर्ष का कारण लिखा जाना चाहिए और यह रिपोर्ट किसी भी हेराफेरी से बचाने के लिए बिना देरी मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए।
5. बलात्कार को सुनवाई के दौरान, बलात्कार पीड़ित के पिछले यौनिक बर्ताव को सबूतों में शामिल नहीं किया जाना चाहिए।
6. रिपोर्ट दर्ज करने से इंकार करने वाले पुलिस अधिकारी को अपराध का दोषी माना जाना चाहिए।
7. मथुरा केस को मद्देनज़र रखते हुए, भारतीय दंड संहिता की धारा 375 जो स्पष्ट करती है कि महिला की सहमति को 'सहमति' तभी माना जा सकता है जब यह साबित हो जाये कि उसकी सहमति स्वतंत्र व स्वैच्छिक थी, में संशोधन किया जाना चाहिए।

8. भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 111ए में 'साबित करने के भार' का प्रावधान बदला जाना चाहिए। उसमें यह जोड़ा जाना चाहिए कि जिन मामलों में अभियुक्त एक सरकारी सेवक, पुलिस अधिकारी, अधीक्षक अथवा जेल, अस्पताल या रिमांड होम का प्रबंधक हो, व जहां यौनिक संभोग साबित हो गया हो और महिला ने शपथपूर्वक बयान दिया हो कि उस संभोग में उसकी सहमति नहीं थी, तो अदालत यह मानेगी कि महिला की सहमति नहीं थी।

इस अंतिम मांग पर एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ था क्योंकि नारीवादियों का मत था कि बलात्कार के अपराध के स्वभाव, समाज में महिलाओं के ऊपर पुरुषों की दवाबकारी सत्ता, 'असहमति' साबित करने की असंभावना क्योंकि इसका सिर्फ़ यहीं तरीका हो सकता था कि महिला कहे उसकी सहमति नहीं थी, को ध्यान में रखते हुए, बलात्कार साबित करने की ज़िम्मेदारी आरोपी की होनी चाहिए, महिला की नहीं। परन्तु जन आंदोलन की पृष्ठभूमि से जुड़ी महिला कार्यकर्ताओं का यह विचार था कि ऐसे प्रावधानों का दुरुपयोग प्रशासन और स्थानीय हित पक्षधर व्यापार संघ के पुरुष सदस्यों, दलित, आदिवासी और किसान संगठन के कार्यकर्ताओं को सताने के लिए कर सकते हैं।

बहस के केंद्र में जेंडर

दिसम्बर 2012 के दिल्ली बलात्कार मामले ने जेंडर की सामाजिक रचना की बहस को और अधिक मुखर बना दिया। आम जनता, सामुदायिक नेता, अभिभावक, युवा, शिक्षक, नीति निर्माता, राजनेता और मीडियाः सभी समाज में यौन हिंसा की व्यापकता पर चर्चा रहे हैं।

भारतीय राज्य, देश के कई हिस्सों में, ख़ासतौर से जम्मू-कश्मीर, पूर्वोत्तर तथा छत्तीसगढ़ में, महिलाओं के साथ हिरासत में होने वाली हिंसा की वास्तविकता को स्वीकार नहीं करता। ऐसे कई मामले अदालत में विचाराधीन हैं जिनमें राज्य अभिरक्षक जैसे पुलिस, उप-सैन्य बल के कर्मचारी अभियुक्त हैं। सरकार को चाहिए कि वह फौरन दोषियों को सज़ा देने के लिए कार्रवाई करे जिससे ऐसी घटनाएं दोबारा न हों। बलात्कार के संदर्भ में *भारतीय साक्ष्य अधिनियम* और बलात्कार से जुड़ी धारा 376 में सुधार को लेकर महिला अधिकार कार्यकर्ताओं की लंबे समय से जारी मांगों ने सरकार को *जस्टिस वर्मा समिति* के गठन के लिए विवश कर दिया। समिति ने अपने सशक्त सुझाव दिए कि यौन आक्रमण के मामलों में तात्कालिक न्याय और उपयुक्त सज़ा देने के लिए क़ानून में क्या सुधार किये जाएं।

आपराधिक क़ानून संशोधन बिल 2013, 19 मार्च 2013 को लोकसभा और 21 मार्च 2013 को राज्य सभा द्वारा पारित किया गया। भारत के राष्ट्रपति ने 2 अप्रैल 2013 को इस बिल पर अपनी मंजूरी प्रदान की और अब इस बिल को *आपराधिक क़ानून संशोधन अधिनियम 2013* के नाम से जाना जाता है। पर यह बड़े अफ़सोस की बात है कि महिला आंदोलन तथा जस्टिस वर्मा समिति के दो महत्वपूर्ण सुझावोंः वैवाहिक बलात्कार तथा भारतीय सेना द्वारा बलात्कार को आपराधिक कृत्य माना जाए, को इस अधिनियम में शामिल नहीं किया गया है।

महिला सशक्तिकरण पर प्रभाव

पिछली चार पीढ़ियों से, स्त्रीद्वेष सोच, बर्बरता, स्त्री-पुरुष संबंधों को यातना-उन्मादी बनाने वाली पोर्नोग्राफ़ी के अधिक प्रयोग, महिलाओं के पहनावे पर पश्चिमीकरण का प्रभाव, उपभोक्तावादी संस्कृति, के प्रभाव से महिलाओं के प्रति मर्यादापूर्ण व्यवहार जो सभ्य संस्कृति का हिस्सा था, अब महिलाओं के प्रति विद्वेष की भावना में बदल चुका है। भारत का शिक्षित मध्यम वर्ग जिसने भारत को "पोस्ट-फ़ेमिनिस्ट" घोषित कर दिया था अब अचानक उम्र दराज़ नारीवादियों को, जिन्होंने महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा को रोकने के सतत प्रयास किये हैं, सार्वजनिक मंचों पर वक्ता बनाकर पेश कर रहा है। पर नारीवादी बलात्कारियों के लिए मृत्यु दण्ड या रासायनिक बन्ध्याकरण की मांग की पक्षधर नहीं हैं।

पिछले महीनों देश भर में हुए हज़ारों प्रदर्शनों में महिलाओं व लड़कियों के लिए गरिमा, समानता, स्वतंत्रता और अधिकारों की मांगें बुलंद की गई हैं। प्रदर्शनकारियों ने क़ानून, मेडिकल इलाज, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक सहायता के माध्यम से तत्कालिक राहत के साथ-साथ बलात्कार के उत्तरजीवियों के लिए दीर्घकालिक पुनर्वास उपायों की भी मांग की है। शहरों को महिलाओं के लिए सुरक्षित बनाने हेतु बेहतर आधारभूत संरचनाओं की आवश्यकता होती है जिनमें भली प्रकार निर्मित फुटपाथ और बस स्टॉप, हैल्पलाइंस तथा आपात्कालीन सेवाएं भी शामिल हैं। परिवहन सेवाओं का प्रभावी पंजीकरण, निगरानी और नियमन (चाहे वे सार्वजनिक, निजी या अनुबंधात्मक हों) उन्हें सभी के लिए सुरक्षित, आसानी से हासिल और उपलब्ध बनाने के लिए अनिवार्य है।

महिला आंदोलन ने राज्य सेवा में कार्यरत तथा विभिन्न संस्थानों में नियुक्त सभी अधिकारियों के लिए जेंडर संवेदनशीलता के अनिवार्य पाठ्यक्रम की मांग दोहराई है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सार्वजनिक स्थल यौनिक उत्पीड़न, शोषण और आक्रमण से मुक्त हों। इसका अर्थ यह भी है कि पुलिस बल को अपने पास शिकायत लेकर आने वाली महिलाओं का यौन शोषण रोकना होगा। उन्हें अनिवार्य रूप से एफ़.आई.आर. दर्ज करनी होंगी और शिकायतों पर काम करना होगा। सभी पुलिस थानों में सी.सी. टी.वी. कैमरे लगाये जाने चाहिए और भ्रष्ट पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई की जानी चाहिए। पूरे देश में बलात्कार तथा अन्य प्रकार की यौन हिंसा के मामलों पर सुनवाई के लिए फ़ास्ट ट्रैक कोर्ट गठित किए जाने चाहिए। राज्य सरकारों को चाहिए कि वे ऐसे इलाकों में इन अदालतों के गठन को प्राथमिकता दे जहां इनकी सख़्त ज़रूरत है और इन मामलों पर छह माह के भीतर सज़ा सुनाए जाने का प्रावधान किया जाना चाहिए।

मीडिया की जीवंत बहसों में पुरुषों को 'शिकारी' और महिलाओं को 'शिकार' के रूप में चिन्हित किया जाता है। पितृसत्तात्मक सामाजिक ढांचों को भी बलात्कार व कार्यस्थल पर यौन हिंसा के डर; पुरुष व स्त्री के लिए यौनिकता के दोहरे मापदण्ड; और रूढ़िवादी ताक़तों विशेषकर धार्मिक नेताओं का खौफ़ दिखाकर, महिलाओं की यौनिकता, प्रजनन और श्रम पर नियंत्रण रखने का आरोप लगाया जा रहा है। उम्मीद है कि अब हमें कुछ सकारात्मक बदलाव देखने को मिलेंगे जो महिला सशक्तिकरण के नये मायने तय कर पाएंगे।

विभूति पटेल, *एस.एन.डी.टी. यूनिवर्सिटी मुंबई में महिला अध्ययन की प्रोफ़ेसर हैं।*

कविता

फालतू

अनामिका

बैठे-बैठे कैसे हो जाता है
एक लकदक आदमी आलतू-फालतू —
बात ये समझ में नहीं आती।
इस पर फुटपाथ पर सजी
आमपन्ना की बूढ़ी मटकी
पूरे ठस्से से कहने लगी —
''फालतू कुछ भी नहीं और कोई नहीं!
खाली विक्शों को अंग्रेज़
ज़ोर से पुकारते थे— फालतू!
और फिर धंस जाते थे उन पर!
कहते हैं, पूरे मानवशरीर में
'एपिण्डिक्स' नाम की
छोटी-सी एक लिबलिबी
होती है बिना काम की —
पर एक बीया भी नारंगी का
उसका कव्वा छूकर देखे तो —
याद दिला देगी नानी, ऐसी सूजेगी!
यों ही कह देते हैं उन सबको फालतू,
जो कि नहीं होते, हो ही नहीं पाते–पालतू।

बीरबहूटी-सी लाल,
'लाली-लाली डोलिया में लाली रे दुल्हनिया!'
'जित देखौं तित लाल' की लाली से लहालोट
था वह भूती लत्ता
जिसका घूंघट ओढ़े बैठे थे चुकूमुकू —
प्याऊ के जुड़वां घड़े
उस चौराहे पर!
लाल थे वे शरम से!
रंग ले रही थीं उन पर
बिसलरी की बोतलें —
पान की दुकान पर सजी!
सोच रहे थे वे लजाते-लजाते —
'क्या अपने दिन लद गए?'
कुल्फी का मटका भी कहता था —
''जाने को होती जो कोई जगह,
जाते-चले जाते!
फूट जाते बनकर भांड़ा ही!
काठ की हंड़िया की तरह
एक बार में ही नौ-छौ हो जाते!''

अनामिका, *हिन्दी साहित्य जगत की जानी-मानी कवयित्री हैं।*

लेख

मथुरा से भंवरी तक

लक्ष्मी मूर्ति

सन 1972, सोलह वर्षीय आदिवासी लड़की मथुरा का चंद्रपुर, महाराष्ट्र की पुलिस हिरासत में सामूहिक बलात्कार; इस मामले ने बलात्कार और आपराधिक क़ानून में संशोधन की मांग को एक देशव्यापी अभियान का रूप प्रदान किया था। इस वर्ष मथुरा 56 साल की हो गई है।

सन 1992, राजस्थान के भटेरी गांव की भंवरी देवी। जिसके साथ ऊंची जाति ने पुरुषों के सामूहिक बलात्कार किया; इस घटना ने कार्यस्थल पर यौन हिंसा क़ानून की पुरज़ोर मांग को तीव्रता प्रदान की। इस साल भंवरी देवी भी 56 वर्ष की हुई हैं।

महिला आंदोलन के इन दोनों प्रतीकों को शायद बलात्कार क़ानून में संशोधन होने से कोई सीधा फायदा नहीं पहुंचा है। मथुरा कुछ साल एक गुमनामी का जीवन जीती रही और फिर शादी करके आगे बढ़ गई। उसको इस बात की कोई खबर नहीं थी कि भारतीय प्रजातंत्र के एक स्तंभ, सर्वोच्च न्यायालय को उसकी ओर से चुनौती दी जा रही थी। 1980 में राष्ट्रीय मीडिया बलात्कार क़ानून में आए बदलावों के लिए ज़िम्मेदार मथुरा का साक्षात्कार करने उसके गांव पहुंचे। तब मथुरा की उम्र बीस वर्ष थी। उसके बाद मथुरा के बारे में कुछ ख़ास सुनने को नहीं मिला।

इसके बावजूद *'मथुरा केस'* नारीवादी इतिहास में न्यायपालिका के पितृसत्तात्मक रवैयों को चुनौती देने के लिए दर्ज है। हालांकि मथुरा बलात्कार कांड 1972 में हुआ था पर यह मामला 1979 में सार्वजनिक बना जब सर्वोच्च न्यायालय ने बंबई उच्च न्यायालय के फ़ैसले जिसमें पुलिसकर्मियों को अपराधी करार दिया गया था, को इस बिनाह पर खारिज़ कर दिया कि वादी 'सेक्स की आदी' थी। फ़ैसले ने इस बात पर भी ज़ोर दिया कि मथुरा ने 'बचाव के लिए कोई गुहार नहीं लगाई' तथा 'उसके शरीर पर कोई चोट या संघर्ष के चिन्ह नहीं पाये गए।' इस निर्णय ने 'सहमति' और 'समर्पण' के अर्थ तथा इस मानक पर एक महत्वपूर्ण बहस का आगाज़ किया कि 'सहमति में समर्पण' निहित होता है परन्तु 'समर्पण में सहमति' शामिल हो ऐसा हरगिज़ ज़रूरी नहीं है।

भारतीय दंड संहिता व न्यायिक कार्रवाई दोनों की अनुपयुक्ताओं को सामने लाते हुए क़ानून के चार प्रोफ़ेसरों ने *मथुरा केस* के न्यायाधीशों की भर्त्सना करते हुए "भारतीय क़ानून व संविधान में दर्ज मानव अधिकारों को त्यागने वाले इस अनोखे फ़ैसले" पर सवाल उठाए। पत्र में मथुरा के सामाजिक संदर्भ पर भी ज़ोर दिया गया, "युवा पीड़िता का निम्न सामाजिक-आर्थिक दर्जा, क़ानूनी हक़ों की कम जानकारी, क़ानूनी सेवाओं तक पहुंच में कमी तथा गरीब व शोषित वर्ग के लोगों में भारतीय पुलिस व थानों का खौफ़"। पत्र ने कुछ बुनियादी प्रश्न भी उठाए: "क्या भारत की अनपढ़, मेहनतकश, राजनैतिक तौर पर मूक मथुराओं के भाग्य में भारतीय संविधान बनने से पहले वाले हालातों से जूझना लिखा है? आज दांव पर हमारी संवैधानिकता और मानव अधिकार सुरक्षा लगी है।"

बलात्कार के जुर्म को लैंगिक असमानताओं और सत्ता संबंधों के संदर्भ में देखने के परिणाम स्वरूप 1983 में बलात्कार क़ानून में प्रमुख संशोधन किए गए जब "हिरासत में बलात्कार" के सिद्धान्त को इसमें जोड़ते हुए मामले में "पुख्ता सबूत मुहैय्या कराने का दायित्व" अभियुक्त पर डाला गया। इसके अलावा पहली बार बंद कमरे में सुनवाई व पीड़िता की पहचान गुप्त रखने का निर्देश देते हुए बलात्कार के लिए कठोर सज़ा का प्रावधान भी बनाया गया।

कोई वास्तविक बदलाव नहीं

आज इन संशोधनों के दस वर्ष बाद भी कोई महत्वपूर्ण बदलाव देखने को नहीं मिले हैं। 1992 में राजस्थान की भंवरी देवी (जो *महिला विकास कार्यक्रम* में एक साथिन का काम करती थी) का बाल-विवाह रोकने की हिमाकत करने पर ऊंची जाति के पांच पुरुषों द्वारा बलात्कार किया गया। महिला अधिकार कार्यकर्ता होने के कारण भंवरी बलात्कार की रिपोर्ट लिखवाने के लिए आवश्यक कार्रवाइयों से परिचित थी और उसने अपने गांव से 55 किलोमीटर दूर जयपुर शहर के उदासीन व पूर्वाग्रह पाले पुलिस व मेडिकलकर्मियों के साथ संघर्ष किया। भंवरी का चिकित्सीय परीक्षण बलात्कार के 52 घंटों के बाद हुआ। क़ानूनी प्रक्रिया ने भी अपनी धीमी गति बरकरार रखी। एक साल बाद चार्जशीट दाखिल हुई और 1995 में सत्र अदालत ने सभी आरोपियों को इस आधार पर रिहा कर दिया कि "ऊंची जाति के पुरुष एक दलित महिला का बलात्कार हरगिज़ नहीं कर सकते।" न्यायालय को इस बात पर भी विश्वास नहीं था कि "चाचा और भतीजा दोनों एक साथ, एक ही औरत का बलात्कार कर सकते हैं।" आरोपी छूट गये और जाति व्यवस्था व परिवार का दण्डाभाव बना रहा।

2007 तक पांच में से दो अभियुक्तों की मृत्यु हो चुकी थी और भंवरी मामले की अपील अदालत में धूल खा रही थी। मथुरा की तरह भंवरी की ज़िंदगी भी अपनी रफ़्तार से चल रही है। आज भंवरी हमारे देश में संघर्षरत औरतों के लिए एक मिसाल बन गई है। उसे बतौर 'विरोध का प्रतीक' अनेक सम्मानों से नवाज़ा और सराहा भी जा रहा है। हालांकि बलात्कार के केस में अभी उसकी जीत नहीं हुई है इसके बावजूद उसके विरोध की शक्ति जटिल क़ानूनी पेचीदगियों, जो न्याय के भ्रामक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करती हैं, पर विजय हासिल करने में कामयाब हुई है। अभी बंगलौर व मंगलोर शहरों में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर सार्वजनिक सभाओं में भंवरी की ऊर्जा ने श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया और उम्मीद की इस लौ को जिलाए रखा कि औरतें हमेशा कमज़ोर और बेचारी नहीं होती। "मेरा पेट सिर्फ़ न्याय से भर सकता है, सम्मानों से नहीं— भंवरी ने महिला आंदोलन के लिए आज तक के सबसे कठिन संघर्ष — समाज में न्याय की धारणा और व्यक्तिगत आघात के बीच तालमेल बनाने के प्रयास को सामने लाते हुए ऐलान किया।

हालांकि बलात्कार का केस घिसट रहा है पर भवंरी के अनुभव ने यौन उत्पीड़न के क़ानून में मूल बदलावों को तीव्रता प्रदान की है। यह नई सोच जो यौन उत्पीड़न के सिद्धान्त को इज़्ज़त, मर्यादा और मिल्कियत की धारणा से अलग रखते हुए, बतौर संवैधानिक अधिकारों की गारंटी के ढांचे में स्थापित करती है, ग्रामीण परिवेश में महिला कार्यकर्ताओं के अनिश्चित दर्जे की न्यायिक स्वीकृति से उपजी है। महिला समूहों द्वारा 1997 में सर्वोच्च न्यायालय में दायर याचिका के जवाब में यौन उत्पीड़न पर *विशाखा मार्गदर्शक* पारित किए गए। सर्वोच्च न्यायालय मे माना कि कार्यस्थल पर यौन हिंसा—

> *संविधान की धारा 14-समानता का अधिकार तथा धारा 19-किसी भी प्रकार का रोज़गार, व्यवसाय या बिजनेस करने का अधिकार, का उल्लंघन करती है। काम करने का अधिकार एक सुरक्षित माहौल में काम करने की सहूलियत तथा गरिमामय जीवन जीने के अधिकार की मांग करता है। अधिकारों को सही मायने में अर्थपूर्ण बनाने के लिए यौन उत्पीड़न से पैदा हुए ख़तरों को हटाना ज़रूरी है।*

यह विडम्बना ही तो है कि महिलाओं के सुरक्षित माहौल में काम करने के अधिकार से संबंधित मूल सिद्धांत राजस्थान के *महिला विकास कार्यक्रम* के असुरक्षित माहौल और जिस काम को सरकार ने कभी भी "रोज़गार" का दर्जा नहीं दिया—से उत्पन्न हुए हैं।

यह विशेष तौर पर एक विरोधाभास ही है क्योंकि यह कार्यक्रम 1970 के संघटन और उसके बाद 1975 में महिला अध्ययन से जुड़ी दिग्गज महिलाओं- फूलरेणु गुहा, लतिका सरकार व वीणा मजूमदार द्वारा लिखी रिपोर्ट— *"टूवर्ड्ज़ इक्वॉलिटीः रिपोर्ट ऑफ़ द कमेटी ऑन द स्टेटस ऑफ़ विमेन इन इण्डिया"* के नतीजतन ही शुरू किया गया था। इसी के बाद छठी पंचवर्षीय योजना में पहली बार महिला व विकास पर एक अध्याय जोड़ा गया जिसमें निम्न उल्लेखित था—

> *एक निम्न शिक्षा दर और निम्न आर्थिक दर्जा महिलाओं की आर्थिक प्रगति की ज़रूरत पर ज़ोर देते हैं। औरतों के सामाजिक-आर्थिक दर्जे में बेहतरी देश में मौजूद सामाजिक ढांचे, रवैयों, मूल्य ढांचों में सामाजिक बदलावों पर काफी हद तक निर्भर करेगी।*

1984 में राजस्थान का *महिला विकास अभिकरण* इन हालातों के प्रतिकार के रूप में शुरू किया गया था क्योंकि आज़ादी के बाद होने वाले विकास के फायदे महिलाओं तक नहीं पहुंचे थे। इस कार्यक्रम के नीति दस्तावेज़ के अनुसार—

अधिकांश सरकारी स्कीमें जिनमें विकास के लिए परिवारों को शामिल करना आवश्यक है औरतों को दरकिनार करने के कारण बुरी तरह असफल रही हैं। यह सिर्फ़ बाल कल्याण कार्यक्रम जिनमें औरतों की शिरकत को भली-भांति स्वीकारा जाता रहा है, का ही सच नहीं है बल्कि डेरी विकास, सामाजिक वनखंड, आईआरडीपी, कृषि उत्पादन आदि में भी देखा गया है। वाकई महिलाओं का विकास राजस्थान के लिए सबसे कठिन चुनौती है।

बदलाव के मुख्य स्रोत

इसमें कोई शक़ नहीं है कि ग्रामीण राजस्थान में बदलाव का मुख्य स्रोत *महिला विकास कार्यक्रम* रहा है जिसके महिला आंदोलन से जुड़ाव ने महिला सशक्तिकरण की मूलभूत समझ — वह समझ जिसका अपना एक अलग जीवन था, के विकास में प्रमुख भूमिका अदा की। गांव की महिला "जाजम" (सभांए) महिला मुद्दों को उठाने के अनोखे मंच बन गए और महिलाएं पारंम्परिक रूढ़ियां तोड़कर वर्जित विषयों पर बातचीत करने लगीं। उन्होंने जाति पंचायतों में हिस्सा लेना शुरू कर दिया। वे घरेलू हिंसा व अन्य तरह की हिंसाओं का विरोध करने लगीं तथा जायदाद व अन्य हक़ों की मांग भी रखने लगीं। सरकारी स्कीमों जैसे स्वास्थ्य, शिक्षा, जनवितरण, न्यूनतम मज़दूरी, ज़मीन के रिकार्ड, जायदाद तथा अन्य क़ानूनी हक़ों की जानकारी सामाजिक व लैंगिक असमानताओं को चुनौती देने के हथियार बन गए। औरतें अपने हक़ों के प्रति सजग हो गईं। वे भ्रष्ट व्यवहारों को पहचानने लगीं तथा दूसरी साथिनों के साथ मिलकर शोषण के ख़िलाफ़ आवाज़ बुलंद करने लगीं।

शुरूआत में तो महिलाओं को *महिला विकास कार्यक्रम* का सहयोग मिला परन्तु समय के साथ-साथ महिलाओं की शक्ति ने ग्रामीण पदानुक्रम को चोट पहुंचानी शुरू कर दी। फलस्वरूप राज्य ने अपनी सत्ता का इस्तेमाल महिलाओं के दावों को नियंत्रित करने में लगा दिया। असंतोष बढ़ने के साथ-साथ कार्यक्रम में निहित विरोधाभास सामने आने लगे। इन दरारों को पाटने के लिए कोई आंतरिक नुस्खे मौजूद नहीं थे। जब साथिन को अपने रोज़गार के शोषित स्वरूप और कार्यक्रम के पदानुक्रम में तनख्वाह को लेकर गुंथी असमानताएं नज़र आईं तब हालात की विडम्बनाएं सतह पर तैरने लगीं।

इस कार्यक्रम का लक्ष्य था ग्रामीण महिलाओं को जानकारी के सम्प्रेषण व शिक्षा प्रशिक्षण के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक दर्जे की पहचान कराना जिससे वे अपने हालात बेहतर बनाकर सशक्तता हासिल कर सकें। साथिनों का काम था सरकार व जनता के बीच एक पुल की भूमिका निभाते हुए सरकारी कार्यक्रमों का कार्यान्वयन और सफलता सुनिश्चित करना। वे काम करती रहीं और आज भी बदहाल हालातों में मात्र सोलह सौ रुपये माहवार (जो 1990 में *महिला विकास अभिकरण साथिन कर्मचारी संघ* के अभियान स्वरूप 200 माहवार से बढ़ाया गया था) पर काम करती हैं। रोज़गार असुरक्षा, कम तनख्वाह के अतिरिक्त काम का चुनौतीपूर्ण स्वरूप भी उनकी तकलीफ़ों में इजाफ़ा करता है।

दहेज, बाल विवाह और लिंग परीक्षण जैसी सामाजिक कुरीतियों की रोकथाम के लिए चेतना जागृति काफ़ी खतरनाक काम हो सकता है, ख़ासकार ग्रामीण स्तर पर जहां सामंती, जातीय और पितृसत्तात्मक ढांचे गहरे पैठे हैं। भंवरी ने अपने समुदाय में जब इन कुरीतियों को खत्म करने की कोशिश की तो उसका बलात्कार किया गया। अपने दोस्तों, रिश्तेदारों व पड़ोसियों के घरों में घुसकर यह मांग रखना कि वे मौजूदा रिवाजों के ख़िलाफ़ जाएं या बाल विवाह न करें अथवा दहेज लेने से इंकार कर दें एक बेहद साहसी काम है। इस जोखिम भरे काम को करते समय कोई रोज़गार सुरक्षा सुविधाएं, कल्याणकारी मानक यहां तक कि मूल साधन जैसे यातायात, मालिक या सरकार का सहयोग मुहैय्या नहीं होता। अनौपचारिक क्षेत्र में महिला कामगरों के काम का असुरक्षित माहौल एक बहुत बड़ा व जटिल मुद्दा है। पर भंवरी देवी संघर्ष से एक सुरक्षित माहौल के लिए निकलने वाला क़ानून, महिला कामगरों के हक़ों को सुनिश्चित करने की दिशा में एक ठोस क़दम है।

यौन उत्पीड़न क़ानून

22 अप्रैल को क़ानून बनने वाला *कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न (बचाव, रोकथाम व प्रतिकार) अधिनियम 2013* महिलाओं के यौन उत्पीड़न मुक्त सुरक्षित माहौल में काम करने के अधिकार को स्वीकृति देने की दिशा में एक ठोस नागरिक प्रतिकार है। इस माहौल को मुहैय्या कराने का पूरा ज़िम्मा मालिक पर है और किसी भी प्रकार का उल्लंघन होने पर उसे सज़ा दी जा सकती है। इस क़ानून के विस्तार क्षेत्र में सार्वजनिक निजी खण्ड के साथ-साथ वेतनयुक्त घरेलू काम व अन्य कार्यस्थल भी शामिल हैं। इसके अलावा "मालिक" की व्यापक परिभाषा में काम की विभिन्न परिस्थितियां तथा अनौपचारिक/ असंगठित क्षेत्र भी शामिल किए गए हैं।

वास्तविक चुनौती तो इस क़ानून के कार्यान्वयन में है। आंतरिक शिकायत समितियों को नागरिक अदालत के अधिकार मुहैय्या करवाने के विवादास्पद मुद्दे के अलावा संगठित क्षेत्र में स्थानीय शिकायत समितियों की सही सक्रियता काफ़ी हद तक उनके गठन पर निर्भर करती है। मामले को संवेदनशील तरीके से निपटाने के लिए यौन उत्पीड़न से जुड़े मुद्दों से परिचित सदस्यों तथा महिला सदस्यों की मौजूदगी भी बहुत अहमियत रखती है क्योंकि कार्यस्थल पर यौन हिंसा को काम के स्थान पर असमान सत्ता संबंधों के ढांचे में देखा जाना चाहिए जिसमें निचले स्तर पर कार्यरत महिलाओं के कमज़ोर दर्जे को विशेष रूप से ध्यान में रखना होगा।

दरअसल इस क़ानून की प्रमुख खामी इसमें औरतों को "झूठी व विद्वेषपूर्ण शिकायतें" दर्ज कराने पर सज़ा के प्रावधान की मौजूदगी है। खण्ड 14 का यही प्रावधान यौन उत्पीड़न की शिकायत करने की हिम्मत दिखाने पर किसी भी महिला के पैरों तले ज़मीन खींचने का दम रखता है। *भारतीय दंड संहिता* में झूठी शिकायतों से नागरिकों को सुरक्षित रखने का प्रावधान पहले से ही मौजूद हैं लिहाज़ा इस विशेष खण्ड की मौजूदगी का मुख्य मायने यही है कि महिला अधिकारों को शक़ की नज़र से देखा जा रहा है। महिला समूहों की लगातार दरख़्वास्तों और शिकायतों के बावजूद नए क़ानून में इस प्रावधान को जोड़ा गया है और इस लिहाज़ से यह इस क़ानून की भारी कमज़ोरी है। जैसा कि *जस्टिस वर्मा कमेटी* की रिपोर्ट में उल्लेखित है—

> *हमारा मानना है कि उपरोक्त प्रावधान पूरी तरह से निदात्मक है और यह क़ानून के उद्देश्य को निष्प्रभाव बनाता है। हमारे ख्याल से इन "रेड-रैग" प्रावधानों को क़ानून में शामिल ही नहीं करना चाहिए क्योंकि इनके पीछे कोई ठोस सोच नहीं होती।*

इतने पुरज़ोर सुझावों के बावजूद इन क़ानून में यह महिला विरोधी प्रावधान मौजूद है जो औरतों के और अधिक शोषण का कारण बन सकता है। "दुरुपयोग" के लिए अत्याधिक क्षतिपूर्ति करने का अर्थ है अपने खुद के प्रतिरोध का दस्तावेज़ तैयार करना।

लक्ष्मी मूर्ति, *एच.आर.आई. इंस्टिट्यूट फ़ॉर साउथ एशियन रिसर्च एंड एक्सचेंज की निदेशक हैं।*

साभारः ई.पी.डब्ल्यू., वॉल्यूम **XLVIII** *न. 23 जून 8, 2013 में पूर्व प्रकाशित*

1. **जस्टिस जगदीश शरन वर्मा** (जनवरी 18, 1933-अप्रैल 22, 2013) जिन्होंने महिलाओं को उनके संवैधानिक अधिकारों को जानने और हासिल करने का अधिकार दिया।
2. **डॉ. वीना मजूमदार** (मार्च 28, 1927-मई 20, 2013) जिन्होंने समानता, न्याय और सशक्तता की भाषा को महिला अध्ययन विमर्श की मुख्यधारा में शामिल किया।
3. **डॉ. लतिका सरकार** (जनवरी 4, 1923-फरवरी 23, 2013) जिन्होंने क़ानून को महिलाओं के अधिकारों को पाने का ज़रिया बनाकर महिला अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की।
4. **डॉ. शर्मिला रेगे** (अक्तूबर 7, 1964-जुलाई 13, 2013) जिन्होंने वर्ग, जाति, धर्म और यौनिकता के सवालों और दलित महिलाओं के हक़ों को नारीवादी विमर्श में शामिल किया।

महिला आंदोलन और समानता के सामाजिक संघर्षों में हमारे पथ-प्रदर्शक शिक्षाविदों, समाजशास्त्रियों और न्यायविदों को हम सबला की ओर से भावभीनी श्रद्धांजलि। इन प्रेरणादायक शख्सियतों को हमारा सलाम।

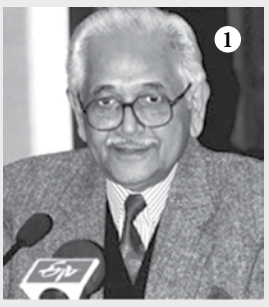

लेख

बलात्कार के बाद का सफ़र

निशा सूज़न

हम सारी ज़िंदगी अपने आपको इस एक अपराध के खतरे से बचाने की कोशिश में लगी रहती हैं। हर अंधेरे मोड़ पर, खाली बस स्टॉप पर, घर या आफ़िस में अकेले रह जाने पर, अपने पीछे सुनाई देती कदमों की आवाज़ पर दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगता है। शायद कहीं से कोई दबोचने वाला है। फिर वह लम्हा बग़ैर किसी हादसे के गुज़र जाता है। धड़कनें सामान्य हो जाती हैं, अगले किसी ऐसे लम्हे की चौकसी के साथ।

यह खौफ़ हर कहीं नज़र आता है। देर रात घर लौटती लड़कियों में, औरतों में, घर पर या दूर शहर में बैठे माता-पिता के दिलों में। अपने ज़िस्म को कितना छिपाएं, कितना अदृश्य करें? पहले से जंज़ीरों में जकड़ी औरतों की ज़िंदगी को और कितना पंगू बना दे? हम हर रोज़ दिन में कई बार दिल की धड़कन बढ़ाने वाले खौफ़ से गुज़रती हैं और बच जाती हैं। लेकिन हममें से कुछ के लिए यह खौफ़, हादसा बन जाता है। सिर्फ़ साल 2012 में ही भारत की कम से कम से 24,923 औरतों के दर्ज मामलों में वे उस हादसे का शिकार हो गई जिसका डर उन्हें हर समय सताता था। उनके साथ बलात्कार हुआ। चार में से तीन मामलों में बलात्कारी या तो कोई जानकार होता है या परिवार वाला।

बलात्कार हो चुका है, वो लम्हा आ चुका है, हादसा घट चुका है, अब क्या करूं? जिसे बचने, डरने की शिक्षा ज़िंदगी भर दी गई थी उसके बाद क्या करना है यह तो किसी ने सिखाया ही नहीं।

अहम फ़ैसला

हो सकता है कि आप इस अपराध के बारे में बात न करना चाहें, न ही उसकी शिकायत दर्ज कराएं। यह फ़ैसला आपका अपना होगा। लेकिन अगर आप इंसाफ़ चाहती हैं, अपराधी को उसके किए की सज़ा दिलाना चाहती हैं तो पहले 24 घंटे आपके लिए बहुत अहम हैं। पहले दिन की कार्रवाई से आप कैसे निपट पाती हैं उस पर निर्भर करेगा कि बलात्कार आपकी ज़िन्दगी पर क्या असर डालता है।

शायद हम सबके दिल की पहली आवाज़ यही हो कि किसी अंधेरे कोने में दुबक कर अपने तन-मन के ज़ख़्मों को सहलाएं क्योंकि हमारी शिक्षा, परवरिश और माहौल में ऐसे किसी हादसे, जिसे औरत के ख़िलाफ़ सबसे बड़ी हिंसा कहा जाता है कि रिपोर्ट करना तो दूर उसकी चर्चा करने को भी बढ़ावा नहीं दिया जाता।

अगर हम बलात्कार को एक घिनौना जुर्म मानती हैं, अगर हम इंसाफ़ चाहती हैं तो कहीं न कहीं अपनी सामूहिक सोच को बदलना होगा ताकि पहली प्रतिक्रिया रिपोर्ट दर्ज करना हो। हमारे पास गंवाने के लिए वक्त नहीं होता।

दिल्ली उच्च न्यायालय की वरिष्ठ वकील रेबेका जॉन, जिन्होंने बलात्कार के अनेक मुकदमों की पैरवी की है, कहती हैं- ज़्यादातर रेप सर्वाइवर रिपोर्ट नहीं करना चाहतीं क्योंकि उन्होंने पुलिस, क़ानूनी प्रक्रिया और अदालती कार्रवाई के बारे में जो कुछ देखा या सुना है वह उन्हें डराता है। वे चुप रह जाना बेहतर समझती हैं। इसके बावजूद बहुत सी औरतें ऐसी भी हैं जो इस रास्ते की तकलीफ़ों को समझते हुए एक लम्बी लड़ाई के लिए कमर कस कर रिपोर्ट करती हैं।

पहला घंटा – पहला दिन

यहां यह समझना बहुत ज़रूरी है कि औरत को ज़िन्दगी भर के घाव देने वाले इस अपराध के सबूतों की ज़िन्दगी बहुत छोटी होती है। पहले एक घंटे में जिस्मानी सबूत ख़त्म होने लगते हैं और तीन दिन में क़रीब-क़रीब गायब हो जाते हैं।

जॉन का कहना है कि सर्वाइवर को बग़ैर अपने गुप्तांग धोए, अंदर और बाहर के कपड़े बदले या पेशाब और कुल्ला तक किए बिना तुरन्त रिपोर्ट लिखवानी चाहिए। यह भी सुनिश्चित करें कि पुलिस कपड़ों को अपने कब्ज़े में लेकर आपकी डॉक्टरी जांच जल्द से जल्द करवाए।

बलात्कार के अधिकतर सबूत शरीर पर होते हैं इसलिए सर्वाइवर का जस की तस हालत में पुलिस और डॉक्टर तक पहुंचना ज़रूरी है।

पहले कहां?

यहां सवाल उठता है कि पहले पुलिस के पास जाएं या पहले डॉक्टर के पास। यह इस बात पर भी निर्भर करेगा कि बलात्कार का रूप कितना हिंसक था। अपनी सेहत और डॉक्टरी जांच के मद्देनज़र पहले डॉक्टर के पास जाना ठीक है। बाद में चाहे आप रिपोर्ट करें या नहीं।

हालांकि भारत में पुलिस थानों की तरह अस्पतालों में भी संवेदनशील, मददगार डॉक्टर मिलने की संभावना कम होती है। आपका संघर्ष यही से शुरू होता है। अपनी जांच और इलाज की मांग के लिए ज़ोर देना होगा। इस समय किसी अपने का साथ होना बहुत ज़रूरी है। याद रखें *आपराधिक प्रक्रिया संहिता* की धारा 357 सी के तहत भारत के सभी अस्पताल चाहे वे सरकारी हो या प्राइवेट बलात्कार सर्वाइवर को प्राथमिक चिकित्सा देने के लिए बाध्य हैं।

न्यायिक परीक्षण

बाहरी चोटों के अलावा अंदरूनी चोटों तथा मस्तिष्काघात की जांच होनी चाहिए। गर्भ, यौन संक्रमण, एचआइवी/एड्स के लिए जांचना भी ज़रूरी है हालांकि आमतौर पर डॉक्टर ये परीक्षण नहीं करवाते हैं। आप मांग करें।

मुंबई की गैर सरकारी संस्था *सेहत* की संगीता रेगे वर्षों से इस मुद्दे के लिए संघर्ष कर रही हैं कि बलात्कार सर्वाइवर के न्यायिक परीक्षण की एक निश्चित विधि तय की जाए जिसका सभी जगह समान रूप से पालन हो। वर्तमान जांच प्रक्रिया अव्यवस्थित अवैज्ञानिक और बहुत तकलीफ़ पहुंचाने वाली है।

पुलिस, अस्पताल और डॉक्टरों के लिए सर्वाइवर का शरीर सिर्फ़ एक अपराध का स्थान होता हैं। उनकी जांच सिर्फ़ न्यायिक नज़रिए से होती है। वे भूल जाते है कि उस शरीर के भीतर एक दिल-दिमाग वाली औरत भी जी रही है। उसकी बहुत सी चोटें दिखाई नहीं देती लेकिन उनका इलाज भी उतना ही अहम है।

दो उंगलियां और हज़ार पूर्वाग्रह

डॉक्टरों में जाति, वर्ग, लिंग आदि जुड़े उनके अपने पूर्वाग्रह तो होते ही हैं उस पर चिकित्सा शास्त्र की दकियानूसी शिक्षा जो आज भी यह सिखाती है कि एक अकेला मर्द वयस्क औरत का बलात्कार कर ही नहीं सकता अथवा यह कि निम्न वर्ग की औरतों का बलात्कार असंभव है क्योंकि वे बहुत ताक़तवर होती हैं।

इसी तरह बलात्कार जांच का एक दकियानूसी मिथक आज भी प्रचलित है वह है— 'दो उंगली जांच'। इसमें डॉक्टर या नर्स सर्वाइवर की योनि में दो उंगलियां डाल कर पता लगाते हैं कि योनि द्वार कितना चौड़ा और लचीला है। यदि दो उंगलियां भीतर जा सकती हैं तो वह औरत संभोग की आदी है। पीछे छिपा भाव यह है कि यदि वह संभोग की आदी है तो एक और ज़बरदस्ती संभोग से क्या फ़र्क़ पड़ता है या वह झूठ बोल रही है या उसका चरित्र ख़राब है।

वर्मा कमेटी रिपोर्ट में इस ढर्रे को बंद करने का सुझाव दिया है पर आज भी कुछ अस्पताल और डॉक्टर इसे योनि व गुदा के लचीलेपन की जांच का नाम देकर जारी रखे हुए हैं। इस जांच से घबराने की ज़रूरत नहीं है। यह जांच औरत या अपराध के बारे में तो कुछ नहीं बताती लेकिन डॉक्टरों के सोच का दिवालियापन ज़रूर साबित करती है। बलात्कार सर्वाइवर को आरंभिक जांच के बाद जल्दी से जल्दी गहन जांच और इलाज के लिए फिर से अस्पताल जाने की सलाह दी जाती है। साथ ही उन्हें व उनके करीबियों को सदमे से निपटने के लिए सलाहकार अथवा मनोचिकित्सक से भी मिलना चाहिए। हालांकि हमारे अधिकतर अस्पतालों में सर्वाइवरों के लिए ऐसी सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं परन्तु मुंबई में *मजलिस* व *राही*, दिल्ली में *स्वंचेतन*, चेन्नई में *तूलीर* तथा बंगलुरू के *वैदेही इंस्टीट्यूट ऑफ़ मेडिकल साइन्सेस* में तात्कालिक सहायता और दीर्घकालिक काउन्सलिंग मिल सकती है।

प्रथम सूचना रिपोर्ट और बयान

यह सही है कि पुलिस थाने सिर्फ़ बलात्कार ही नहीं बल्कि सभी अपराधों की रिपोर्ट लिखने में आनाकानी करते हैं।

यदि रिपोर्ट दर्ज कराने में परेशानी आए तो एक सुझाव, जो ख़ासतौर पर शहरों में कारगर है कि आप कंट्रोल रूम को फ़ोन करके अपनी जगह का पता बताएं। साथ ही उस ज़ोन के एएसपी का मोबाइल नम्बर ले लें। इस कार्रवाई का थाना कर्मचारियों पर अच्छा असर पड़ता है और प्रायः वे रिपोर्ट दर्ज करने में चुस्ती दिखाते हैं।

आपराधिक प्रक्रिया संहिता की संशोधित धारा 154 के तहत पुलिस बलात्कार सर्वाइवर की रिपोर्ट दर्ज करने के लिए बाध्य है। यदि वह शारीरिक या मानसिक रूप से विकलांग है तो उसके घर जाकर उसका बयान लेना भी उनका फ़र्ज़ है। अपना बयान दर्ज करवाते समय हो सके तो अपने वकील को साथ रखें। यदि वकील को बुलवाने में समय लगने की आशंका

हो तो मुंडकर का कहना है कि समय न गंवाते हुए खुद अपना बयान लिखवाएं।

वकील ना हो तब भी बयान दर्ज करवाने से पहले या तो घटनाओं को सिलसिलेवार कागज़ पर लिख लें या अपने दिमाग में अच्छी तरह सोच लें। यह सही है कि उन हालात में सर्वाइवर के लिए यह सब कर पाना आसान नहीं है परन्तु मुकदमे की सफलता के लिए यह अहम है।

नए तंत्रिका विज्ञानी अध्ययनों ने बताया है कि जब कोई व्यक्ति किसी हिंसक हादसे को याद करता है तो उसके मस्तिष्क के आगे की सतह काम करना बंद कर देती है। उसके शरीर में तनाव के हारमोन का स्तर बहुत बढ़ जाता है और वह बहुत सी चीज़ें याद नहीं कर पाता।

दुर्भाग्य से हमारी जांच व्यवस्था आधुनिक नहीं है और अदालती व्यवस्था भी बयान में फेरबदल को सहानुभूतिपूर्ण नज़रिए से नहीं देखती। इसलिए स्वयं ही जितना हो सके शांत होकर छोटी से छोटी बात, दृश्य, आवाज़ें याद करने की कोशिश करें और उन्हें लिखवाएं। बलात्कारी का चेहरा-मोहरा, कपड़े, बातचीत, भाषा, जगह का विवरण यदि गाड़ी है तो उसका रंग, मॉडल, पृष्ठभूमि की आवाज़ें सभी कुछ बताएं। पुलिसकर्मियों से डरें नहीं और बयान चाहे कितना भी लम्बा क्यों न हो उसे दर्ज कराने पर ज़ोर दें। यहां एक और बात ध्यान रखने की है कि अपने बयान पर दस्तख़त करने से पहले उसे अच्छी तरह पढ़ लें, जांच लें कि लिखने वाले ने अपनी तरफ से कुछ जोड़ या घटा तो नहीं दिया है। इसकी काफी संभावना होती है।

विरोध का अभाव बनाम सहमति

कई बार पुलिसकर्मी या बचाव के वकील यह पूछते हैं कि औरत ने संघर्ष क्यों नहीं किया या मदद के लिए शोर क्यों नहीं मचाया। अनेक बार सर्वाइवर खुद अपराधी महसूस करती है कि उसने ऐसा क्यों नहीं किया। इसे उसकी सहमति के रूप में भी देखा जाता है।

नई शोध बताती है कि अत्यन्त भयानक परिस्थितियों में, मुकाबला करने और भागने के अलावा एक तीसरी स्थिति भी हो सकती है जिसमें व्यक्ति जड़ हो जाता है। शरीर और दिमाग अस्थाई रूप से काम करना बंद कर देते हैं।

इसके अलावा भी कई कारण हो सकते हैं जिनके चलते सर्वाइवर विरोध नहीं करती। बलात्कार बंदूक या चाकू की नोक पर भी किया जा सकता है। जान से मार देने, यातना पहुंचाने या परिवार को नुकसान पहुंचाने की धमकी दी गई हो अथवा उसे आघात या किसी नशीली दवा से निष्क्रिय कर दिया गया हो वह स्वयं शारीरिक या मानसिक रूप से अक्षम हो। यदि सर्वाइवर की उम्र 18 वर्ष से कम है तो सहमति का कोई महत्व ही नहीं रह जाता। यह याद रखें कि आज्ञा मान लेने या झुक जाने का अर्थ सहमति नहीं होता।

भारतीय दंड संहिता की धारा 375 के तहत ऐसी सभी स्थितियों में दी गई सहमति को भी क़ानून, लड़की की रज़ामंदी नहीं मानता। इसलिए बयान लिखवाते समय आप विरोध न कर पाने के कारणों का खुलासा करें।

यदि बलात्कारी की पहचान हो गई है तो उसे गिरफ़्तार कराएं। बलात्कारी की भी डाक्टरी जांच कराएं ताकि उसके शरीर और कपड़ों पर मौजूद वीर्य, चोट या खरोंच, सर्वाइवर के बाल या खून जैसे सबूतों को नष्ट होने से पहले बरामद किया जा सके। इसके बाद पुलिस अपराध के स्थान का मुआयना और जांच करके अतिरिक्त सबूत पाने की कोशिश करती है। गवाह ढूंढती है, उनके बयान लेती है। इस सारी प्रक्रिया के दौरान यदि आपका वकील साथ रहे और गतिविधियों पर नज़र रखे कि पुलिस लापरवाही से सबूत नष्ट न हो जाएं तो आपका केस मज़बूत होगा।

बदला नहीं इंसाफ़ की सोच रखें

यह सच है कि क़ानूनी प्रक्रिया के हर चरण पर घर, मोहल्ले और समाज में सर्वाइवर पर उंगली उठ सकती है। उसे बुरा भला भी कहा जा सकता है। ये सारी चीज़ें हिम्मत और हौसला तोड़ती हैं। उस पर हमारे देश में बलात्कारियों को सज़ा होने का प्रतिशत बहुत कम है। अदालत तक पहुंचने वाले कुल मामलों का मात्र 26 प्रतिशत। अदालती प्रक्रिया आने आप में बहुत लम्बी चलने वाली होती है जिसके बीच हिम्मत टूटने लगती है, निराशा होती है लेकिन यही परीक्षा की घड़ी है।

उच्चतम न्यायालय लगातार यह फ़ैसले देता रहा है कि बलात्कारी को सज़ा देने के लिए महिला अभियोगी के अपुष्ट साक्ष्य भी पर्याप्त हैं। यह बहुत उत्साहवर्धक टिप्पणी है।

अतः यदि आप पहले 24 घंटों की सभी प्रक्रियाओं के दौर से मज़बूती से गुज़र चुकी हैं। आप अपने बयान पर अडिग हैं और आने वाले दिनों में हिम्मत बरकरार रखती हैं तो अपराधी को सज़ा मिलने की संभावनाएं बहुत अच्छी हैं।

साथ यदि आप यह भी विश्वास करती हैं कि बलात्कार आपके जीवन का अंत नहीं है तो आप एक विजेता हैं।

निशा सूज़न, *तेहलका पत्रिका के साथ जुड़ी रही हैं। वे महिला मुद्दों पर लिखती हैं। यह लेख 2 जुलाई 2013 को yahoo!news india में अंग्रेज़ी में छपा था।*

आपबीती

मैं अपने जीवन के लिए लड़ी...और जीती भी

सुहेला अब्दुलालि

तीन साल पहले मेरा सामूहिक बलात्कार हुआ था, मैं 17 वर्ष की थी। मैं बम्बई में पली थी, आजकल यूसए में पढ़ती हूं। बलात्कार पर थीसिस लिख रही हूं जिस पर शोध करने के लिए घर लौटी हूं। उस दिन से आज तक बलात्कार से जुड़े पूर्वाग्रहों से मैं जूझती आई हूं। बार-बार लोगों ने इशारे से कहा है कि अपनी 'पवित्रता' खो देने से अच्छा था मैं मर जाती। पर मैं ऐसा नहीं मानती। मेरे लिए मेरा जीवन बेशकीमती है। मैं जानती हूं समाज के डर से कई औरतें चुप रहती हैं। पुरुष व स्त्री दोनों ही औरत को दोषी मानते हैं।

वह जुलाई की शाम थी। यह वही साल था जब महिला समूह बलात्कार के बेहतर क़ानूनों की मांग कर रहे थे। मेरा दोस्त राशिद और मैं अपने घर से करीब डेढ़ किलोमीटर दूर पहाड़ के किनारे बैठे थे। वहां दरांती लिए चार आदमियों ने हम पर हमला कर दिया। हमें मार-पीट कर पहाड़ के ऊपर चढ़ने को मजबूर किया और वहां करीब दो घंटे हमें बंद रखा। जैसे-जैसे रात ढली उन्होंने राशिद और मुझे अलग-अलग कर दिया। उसके बाद उन्होंने राशिद को कैदी बनाकर मेरे साथ बलात्कार किया। हमें धमकी दी कि कोई भी हरकत करने पर हमें सज़ा भुगतनी पड़ेगी। उनकी ये तरकीब कामयाब रही।

वे तय नहीं कर पा रहे थे कि हमें ज़िन्दा रखें या नहीं। मैं हर हाल में जीना चाहती थी। पहले मैंने ताकत से उनका सामना किया, फिर मनुहार की। मैंने प्यार, मानवता और इंसानियत की दुहाई दी। मैंने उनसे कहा कि अगर वे हम दोनों को ज़िन्दा छोड़ देंगे तो मैं उनसे अगले दिन वापस आकर मिलूंगी। इस बात की मुझे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी, पर हम दोनों की ज़िन्दगी बच गई। ऐसा लग रहा था कि मैं एक लम्बे अर्से से यातना झेल रही हूं। मेरे साथ करीब दस बार बलात्कार किया गया। पर मैं इतनी तकलीफ़ में थी कि मुझे पता ही नहीं चल रहा था कि मेरे साथ क्या हो रहा था। फिर मुझे छोड़ दिया गया, एक लम्बे भाषण के बाद कि मैं कितनी चरित्रहीन लड़की हूं जो एक लड़के के साथ अकेली घूम रही हूं। इस बात से वे बेहद नाराज़ थे। अपनी कट्टर आत्म-धार्मिकता के चलते वे मुझे सबक सिखाना चाहते थे।

हमें पहाड़ के नीचे ले जाकर उन्होंने हमें जाने दिया। एक दूसरे को सहारा देते हम गिरते-संभलते चलते रहे। वे दरांती लहराते हमारे पीछे-पीछे आते रहे। सबसे अधिक खौफ़नाक बात यही थी— रिहाई हमारे सामने थी और मौत पीछे। हम घर पहुंचे टूटे-फूटे, बिखरे और हताश।

हालांकि मैंने वादा किया कि किसी से इस हादसे का ज़िक्र नहीं करूंगी, पर घर पहुंचते ही मैंने पापा से पुलिस को फ़ोन करने के लिए कहा। वे परेशान थे पर मैं नहीं चाहती थी कि किसी और के साथ ऐसा हो। पुलिसकर्मी असंवेदनशील और अपमानजनक थे। वे मुझे दोषी महसूस कराने की कोशिश कर रहे थे। जब मुझसे पूछा गया कि क्या हुआ था तो मैंने बेझिझक सब कुछ साफ़-साफ़ बयान कर दिया। वे अवाक थे कि मैं शर्मसार नहीं थी। उन्होंने कहा, पब्लिसिटी होगी।

मैंने कहा, कोई बात नहीं। कहा मुझे संरक्षण केन्द्र भेजा जाएगा। तब भी मैंने कहा मुझे ऐतराज़ नहीं। मैं सोच ही नहीं सकती थी कि इस घटना के लिए राशिद या मैं ज़िम्मेदार थे। अपने बलात्कारियों को सज़ा दिलाने के लिए मैं किसी भी हद तक जा सकती थी।

मुझे जल्दी ही पता चल गया कि क़ानूनी तंत्र में औरतों के लिए कोई न्याय नहीं है। जब हमसे पूछा गया कि हम रात को पहाड़ी पर क्या करने गए थे तो मुझे झुंझलाहट हुई। जब राशिद से पूछा कि वह चुप क्यों रहा तो मैं चीख पड़ी। मेरे कपड़ों और राशिद के शरीर पर यातना के कोई चिन्ह क्यों नहीं है? इन सवालों पर मैं खौफ़ और पीड़ा से टूट गई। पुलिस को यह समझ क्यों नहीं आ रहा था कि हमारे हालातों में हम मजबूर थे। मेरे पिता ने उन्हें चले जाने को कहा। पुलिस ने आरोपियों पर कोई इल्ज़ाम नहीं लगाए। "हम घूमने गए थे और लौटने में देर हो गई थी, इसलिए पुलिस को खबर दी गई थी।" यह दलील लिखकर केस खत्म कर दिया गया।

आज तीन साल हो गए हैं, पर एक दिन भी ऐसा नहीं बीता जब इस हादसे की याद ने मुझे डराया न हो। असुरक्षा, अरक्षितता, गुस्सा, खौफ़, बेबसी— मैं हर पल इनसे संघर्ष करती हूं। सड़क पर चलते-चलते, अपने पीछे कदमों की आहट सुनकर मेरे पसीने छूट जाते हैं और चिल्लाने से बचने के लिए मैं अपने होंठ काट लेती हूं। दोस्ती भरे स्पर्श से मैं सिकुड़ जाती हूं। आदमियों की आंखों में वासना तैरती देखकर मैं सहम जाती हूं।

पर इसके बावजूद मैं खुद को बहुत सशक्त महसूस करती हूं। मैं जानती हूं कि हर दिन जीवन का एक तोहफ़ा है और कोई भी नकारात्मक रवैया मुझे खुशहाल रहने से रोक नहीं सकता। आज मैं अपने जीवन को और अधिक संभालकर रखती हूं।

मैं पुरुषों से नफ़रत नहीं करती। यह करना बहुत आसान है पर वे तो खुद ही अलग-अलग दमन के शिकार हैं। मैं पितृसत्ता से नफ़रत करती हूं। और उन झूठों से जो कहते हैं पुरुष औरतों से श्रेष्ठ हैं, और उनके अधिकार ज़्यादा हैं हम औरतों से। मेरी नारीवादी दोस्त समझती हैं कि मेरा बलात्कार हुआ था इसलिए मैं महिला मुद्दों की बात करती हूं। पर बलात्कार तो उन सभी कारणों की एक अभिव्यक्ति थी कि मैं नारीवादी क्यों हूं। बलात्कार को एक खाके में बंद क्यों किया जाए? क्या अनचाहे संभोग को ही बलात्कार कहा जा सकता है? क्या रोज़ सड़क पर हमें घूरने वाले, हमें यौन वस्तु की तरह देखने वाले, हमारे हक़ छीनने वाले, हमारा दमन करने वाले, हमारा बलात्कार नहीं करते?

जब तक औरतें तरह-तरह से दमन का शिकार होती रहेंगी तब तक हम बलात्कार से असुरक्षित रहेंगे। हमें अपने चारों तरफ इसकी मौजूदगी को स्वीकारना होगा, इसके विभिन्न रूपों को समझना होगा। यह एक अपराध है और बलात्कारी अपराधी। पर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आज मैं ज़िन्दा हूं। मेरे लिए जीवित होना बहुत मायने रखता है। जब किसी को मौत का खौफ़ दिखाकर लूटा जाता है तब उसे दोषी क्यों नहीं समझा जाता? पर बलात्कार होने पर उससे पूछा जाता है उसने विद्रोह क्यों नहीं किया क्या, उसे मज़ा आया क्या? आखिर क्यों?

हमें बलात्कार को देखने का नज़रिया बदलना होगा। यह दूसरी औरतों की समस्या नहीं है। हम सबकी है। बलात्कारी हमारा पड़ोसी या कोई पागल या कोई चाचा, मौसा, दोस्त कोई भी हो सकता है। जब तक दुनिया में सत्ता संबंध असमान रहेंगे और पुरुष औरत को अपनी जागीर समझते रहेंगे, बलात्कार के डर में हम जीते रहेंगे और दण्डाभाव बना रहेगा।

मैं एक उत्तरजीवी हूं। मैंने बलात्कार की चाह नहीं रखी थी, न ही मुझे इसमें आनन्द आया था। ये मेरे जीवन की सबसे बुरी यातना थी। बलात्कार औरत की गलती नहीं है। इस लेख के ज़रिए मैं उस चुप्पी को तोड़ने का प्रयास कर रही हूं और उन मिथकों को तोड़ रही हूं जो हम अपने इर्द-गिर्द यह तसल्ली देने के लिए गढ़ लेते हैं कि हम संभावित पीड़ित नहीं हो सकते, और ऐसा करके हम बलात्कार के पीड़ितों को एक ऐसे दर्दनाक अकेलेपन से जूझने को मजबूर कर देते हैं जिसकी हम कल्पना भी नहीं करना चाहते। ”

यह लेख सन् 1983 में मानुषी में छपा था। आज सुहेला लिखती, पढ़ती और घूमती हैं। वे कहानियां कहती हैं और पेड़-पौधों के साथ समय बिताती हैं।

लेख

मर्दों का इससे क्या लेना देना?

राहुल रॉय

मैं शांति से बैठ कर अपनी नई फ़िल्म पूरी करने की कोशिश कर रहा था और अपने आपसे वादा किया था कि हाथ में लिए काम पर एकाग्र रहूंगा और ध्यान इधर-उधर भटकने नहीं दूंगा। लेकिन बस, बहुत हुआ!

मुझे यह देख कर बहुत धक्का लगा और निराशा हुई कि किस तरह से मर्दों ने एक 'प्रोटेस्ट' को हथिया लिया, जो शायद औरतों के दिल से निकला बहुत अहम भावोद्गार हो सकता था या शायद अब भी है। वे औरतें, जिन्होंने कभी अपने सपने में भी नहीं सोचा होगा कि पुलिस डंडे लेकर उन्हें खदेड़ेगी या वे पानी की तेज़ बौछारों का सामना करेंगी। मुझे यकीन है कि दिल्ली की अनेक युवा लड़कियों के लिए यह अचानक बड़े हो जाने का क्षण था।

मुझे मालूम है कि रायसीना पहाड़ी पर इधर से उधर दौड़ती मध्यवर्गीय औरतों के बारे में और इस सबसे क्या होता है को लेकर काफ़ी बख़िए उधेड़े गए हैं। मैं कहता हूं, होता है।

अगली बार जब वे छत्तीसगढ़ या उड़ीसा में पुलिस द्वारा आदिवासियों को खदेड़ते देखेंगी तो घंटी बजेगी।

घंटी बज चुकी है।

आज लेडी श्री राम कॉलेज की एक उन्नीस वर्षीया छात्रा का लेख छपा है जिसने संसद भवन पुलिस थाने में पुलिस के साथ अपनी भिड़न्त के बारे में लिखा है। उसने एक अहम टिप्पणी की है कि अगर दिल्ली के नाम-गिरामी घरों की लड़कियों के साथ ये इस तरह का बर्ताव कर सकते हैं तो भारत के दूर-दराज़ के छोटे शहरों, कस्बों में क्या होता होगा?

इंडिया गेट पर हज़ारों युवा लड़कियां अपने आप एक जुट हो गईं और जिसमें उनकी मांओं ने उनका साथ दिया, यह अपने आपमें एक बहुत बड़ी बात है। पितृसत्ता के ख़िलाफ़ लड़ाई को कभी इतनी अहमियत नहीं दी गई जितनी कि वर्ग और पूंजीवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई को और जिस बात को बड़ी सहूलियत से भुला दिया गया वह है कि पितृसत्ता और पूंजीवाद के बीच का सीधा और सहज रिश्ता।

सच्चाई यह है कि मर्द तय करते हैं कि क्या अहम है और क्या नहीं। यह भी सच है कि जेंडर के सवाल को वर्ग संघर्ष के पुरोधा आमतौर पर नज़रअंदाज़ करते रहे हैं। पूरी दुनिया में समाजवादी आंदोलन अपने आरंभ से ही इस कलंक को ढो रहा है।

जो वामपंथी पार्टियां आज इस आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में हैं उनकी अनेक युवा महिला सदस्यों ने कई मौक़ों पर मुझे बताया है कि किस तरह से उन्हें अपने पुरुष कॉमरेडों के नारीद्वेष का सामना करना पड़ता है। मेरे विचार से समय आ गया है कि न सिर्फ़ सरकारी आक़ा अपनी लिंगवादी पितृसत्तात्मक और नारी विरोधी मानसिकता के बारे में सोचें बल्कि पार्टी और ग़ैर पार्टी वाले वामपंथी भी सोंचे, जो यह छवि पेश करते हैं कि वे पितृसत्ता के प्रभाव से आज़ाद है लेकिन दरअसल में वे इस रोग से जकड़े हुए हैं। अपने सोच और रवैयों में वे किसी अन्य राजनैतिक समूह से ज़रा भी अलग नहीं हैं।

मैं जानता हूं कि मेरे बहुत से वामपंथी दोस्त इससे नाखुश होंगे लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि इन संस्थाओं की बहुत सी औरतें मन ही मन मुझसे सहमत होंगी। आज के संदर्भ में मेरा यह मुद्दा उठाना शायद कुछ अजीब और ग़ैरवाजिब लगे जबकि ध्यान उस भयानक बलात्कार मामले की तरफ़ है जिसने दिल्ली की बड़ी आबादी को हिला दिया है। मैं

मानता हूं कि हम सरकार से सुधार के उपायों और जवाबों की मांग करें इससे पहले हमें ख़ुद अपने घरों में झांकना चाहिए कि हम कितनी गड़बड़ी पर पर्दा डाले हुए हैं।

दिल्ली विरोध प्रदर्शन का विश्लेषण करने वाले लेखन में दो तरह की प्रतिक्रियाएं ज़्यादा साफ़ नज़र आ रही हैं। एक तो यह कि यह सिर्फ़ मध्यवर्गीय बच्चों का झुंड है, जो अपने जैसी ही एक लड़की के साथ हुए हादसे और जो उनके साथ भी हो सकता था, से उत्तेजित हो गए हैं। इसलिए दरअसल में यह विरोध पितृसत्ता और उसकी सभी बुराइयों पर सवाल नहीं है बल्कि वर्ग आधारित एकता है।

दूसरी राय जो सुनने में आ रही है वह है कि देखो, हम कब से गुजरात, कश्मीर, मणिपुर और दलित औरतों के संदर्भ में बलात्कार का मुद्दा उठाते रहे हैं लेकिन दिल्ली में विरोध प्रदर्शनों में मुट्ठी भर लोग ही जुट पाते थे। इसलिए यह विरोध प्रदर्शन वास्तव में बलात्कार की सख़्त सच्चाइयों के बारे में नहीं है बल्कि कुछ शौकीनों की भड़ास है जिनके पास कोई निश्चित नज़रिया नहीं है और वे मृत्युदंड या भीड़ द्वारा इंसाफ़ जैसी ख़तरनाक मांगे कर रहे हैं।

पिछले तीन दशकों से दिल्ली की वामपंथी राजनीति को क़रीब से जानते और उसमें प्रायः सहभागिता निभाने के दौरान जो चीज़ मुझे परेशान करती रही है वह है कि हम नैतिक बड़प्पन का ढोंग किए घूम रहे हैं और उसी के नीचे दब कर रह गए हैं। प्रत्येक विरोध प्रदर्शन को राजनैतिक स्पष्टता, उचितता और वर्ग संयोजन के आधार पर वैज्ञानिक जांच से गुज़ारा जाना चाहिए और उसे उसमें पूरी तरह खरा उतरना चाहिए वरना वह इतिहास के कूड़ेदान का हिस्सा बन जाएगा।

वामपंथी राजनीति वर्ग के दृष्टिकोण से कहां ठहरती है? क्या उसे गुजरात कांड पर आई सभी रिपोर्टों और भगवा टोली द्वारा करवाए गए सामूहिक यौन हमलों की जानकारी है? क्या उन्हें पिछले चालीस वर्षों में देश में चली सभी जेंडर चर्चाओं के बारे में पता है? और हां, उनके अपने भीतर वर्ग स्थिति का टेढ़ा सवाल, जिस पर दरअसल सवाल उठाया ही नहीं जा सकता क्योंकि उन्होंने तो दुनिया की सभी समस्याओं के हल देने वाला धर्म ढूंढ कर अपने सभी पाप धो लिए हैं और पाक-साफ़ हो चुके हैं।

इन सभी बातों पर मैं सिर्फ़ इतना ही कहना चाहूंगा कि आपके सामने एक बहुत बड़ा और असली ख़तरा है कि आप विश्व में तेज़ी से खत्म हो रहे वामपंथी कूड़ेदान के इतिहास के बचे खुचे ढेर में सबसे नीचे होंगे। एक दोस्त और हमसफ़र के नाते मैं आपको यही सबसे अच्छी राय दे सकता हूं कि पितृसत्ता और उसका असंतोष उतना ही गंभीर मुद्दा है जितना वर्ग और उससे जुड़े संघर्ष का। मैं जानता हूं कि कुछ लोग पलट कर तुरंत वही घिसा-पिटा वामपंथी तर्क देंगे कि औरतों का दमन, पूंजीवाद और निजी सम्पत्ति का हिस्सा है। उनकी अंतिम मुक्ति तभी हो सकती है जब उनके दमन के औज़ारों को उखाड़ फेंका जाएगा। मेरी उन सबसे यह विनम्र गुज़ारिश है कि जब तक हम क्रांति आने का इंतज़ार करते हैं उन्हें अपने घरों में, पार्टियों में कुछ बदलाव लाने से कौन रोक रहा है? अगर 50% इंसान औरतें (भारत में काफ़ी कम) हैं तो आख़िर उन्हें चैन की सांच लेने के लिए पूंजीवाद के ख़त्म होने का इंतज़ार क्यों करना पड़ेगा?

शायद यह उकसाने वाली बात लगे लेकिन मुझे लगता है कि इसे परखना चाहिए कि औरतों का सवाल हमेशा ही वर्ग के सवाल से कम महत्वपूर्ण क्यों रहा है? पुरुषों के लिए वर्ग ही सब कुछ क्यों है चाहे पिछले सौ सालों में उसके हर सूक्ष्म भेद को, रेशे को समझ लिया है।

मैं यह भी अच्छी तरह से जानता हूं कि 'औरतें' शब्द शायद किसी एक समन्वित और घुली-मिली श्रेणी का नाम नहीं है। वे भी अपनी जाति, वर्ग, नृजातियता आदि से मिले अनुभवों के आधार पर बंटी हुई हैं। लेकिन फिर भी सवाल तो पितृसत्ता का है। हालांकि वर्ग, जाति वगैरह औरतों को बांटते हैं और एक दूसरे के सामने खड़ा कर देते हैं लेकिन पितृसत्ता उन्हें आपस में जोड़ती है। पितृसत्ता के उनके तजुर्बे उनमें समानुभूति का अहसास पैदा करते हैं।

जहां तक मर्दों का सवाल है वर्ग, जाति, राजनीतिक विचारधारा और सभी सामाजिक भेदभाव के बावजूद उन्हें आपस में जोड़ने वाली चीज़ है मर्दानगी। जिस तरह से मर्दागनी और उसकी बुराइयां उन्हें एकजुट करती हैं वैसे और कोई नहीं करता। मर्दानगी मर्दों की एकता का महान उत्सव है। उसकी खूबियों और क्षमताओं की प्रंशसा में बहुत सा साहित्य और इतिहास रचा गया है। लेकिन औरतों की एकता और जुड़ाव पर चुप्पी है।

यदि इंडिया गेट के युवा प्रदर्शनकर्ता राजनीतिक चेतना के तराज़ू पर हल्के पड़ते हैं तो मुझे यह कहने में कोई दिक्क़त नहीं कि जो उन पर सवाल उठाते हैं, वे ढोंगी हैं क्योंकि वे खुद भी अपनी वैचारिक परम्परा के भीतर पितृसत्ता के ख़िलाफ़ वचनबद्धता में ईमानदार नहीं रहे हैं।

हम सभी दिल्ली पुलिस नाम की बीमारी से अच्छी तरह वाक़िफ हैं। हम जानते हैं कि उनसे संस्थागत जेंडर संवेदनशीलता

की उम्मीद करना व्यर्थ है लेकिन यह उससे भी गंभीर बात है कि वे लोग और राजनीतिक मोर्चे जो मानव मुक्ति के सभी जवाब देने का वादा और दावा करते हैं खुद लिंगवादी, नारी विरोधी और स्त्री द्वेषी विचारों से मुक्त नहीं हैं।

हालांकि राज और सरकार की गंदगी हम बीच चौराहे पर धोना चाहते हैं, वामपंथियों में पितृसत्ता की बात व्यक्तिगत रूप से बंद दरवाज़ों के पीछे करना चाहते हैं, यहां तक कि संस्था के मंच पर भी नहीं। ऐसे पाखंड पर मुझे मतली होती है।

विनम्र और शैक्षिक भाषा में हम मर्दानगी को सत्ता का हक़दार समझने की सोच के रूप में परिभाषित कर सकते हैं। लेकिन अगर मैं ईमानदारी से कहूं तो यह एक विकृति है, रोग है। पिछले कुछ समय से मर्दानगी के संकट की बात करना फ़ैशन बन गया है। ख़ासतौर पर जब कुछ टिप्पणीकर्ताओं ने दिल्ली में युवा लड़की और उसके दोस्त पर हुए हमले और बलात्कार की चर्चा करते हुए यौन हिंसा या हिंसा की वर्ग से जुड़ी प्रकृति की तरफ़ इशारा किया।

सच्चाई यह है कि मर्दानगी हमेशा से संकट रही है। मर्दानगी मुसीबत के अलावा कुछ और है ही नहीं क्योंकि यह नारीत्व की कीमत पर अपने आपको ऊंचा उठाती है। यह मान कर चलती है कि मर्द होने के नाते कुछ अधिकार और सत्ता पुरुषों का हक़ है। यह तरह तरह की सुविधाओं का भंडार बना कर वर्ग, जाति, यौन प्रवृत्ति आदि के आधार पर बड़ी सफ़ाई से सभी मर्दों में बांट देती है। इन सुविधाओं के अपने-अपने हिस्सों के लिए मर्द आपस में लड़ते हैं लेकिन जब औरतों की बात आती है तो एक हो जाते है। उनकी यह एकता वर्गों, जातियों, राजनैतिक परिदृश्यों से परे जाती है सिर्फ़ इसलिए कि वे समझते हैं कि वे ब्रह्मांड का केंद्र हैं और दुनिया के लिए एक बड़ा तोहफ़ा है। प्रकृति ने उन्हें विशेष अधिकारों और सुविधाओं के साथ पैदा किया है जिनके बारे में सोचने, शंका करने या स्वयं को दोष देने की बिल्कुल ज़रूरत नहीं है।

ठीक वैसे ही जैसे औरतों के शांत विरोध प्रदर्शन को युवा मर्दों ने बड़े आराम से हथिया लिया और खुद उसके अगुवा बन बैठे, पुलिस पर पत्थर फेंकने और गाड़ियां तोड़ने लगे। वामपंथी, दक्षिणपंथी घरों में, दफ्तरों में, कारखानों में, राजनीतिक संघर्षों में मर्द सोचते और मानते हैं कि वे ख़ास हैं और अधिकार और सत्ता के लिए ही पैदा हुए हैं। इस बात से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि इस बेरहम शहर में औरत होने और सार्वजनिक जगहों से निपटने का क्या मतलब है, के बारे में उनमें रत्ती भर भी समझ हो।

इस बात से भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि उनकी अपनी पार्टियां और संस्थाएं औरतों के साथ होने वाले भेदभाव की मिसाल हैं। मर्द नेता बनने और नेतृत्व करने के लिए ही बने हैं। उनके दिमाग़ में दूर-दूर तक यह विचार आना नामुमकिन है कि इस प्रदर्शन की अगुवाई औरतों को ही करनी चाहिए क्योंकि बुनियादी तौर पर वे ही रोज़मर्रा के जीवन में इस सबका सामना करती हैं। इस शहर में औरतों के लिए बलात्कार और यौन हमले का खतरा एक जीता जागता सच है और उसी रूप में मर्द उसका अहसास कभी कर नहीं सकते।

मर्दानगी का रोग, उससे जुड़ी कई और बीमारियां पैदा करता है। उनमें से दो बड़ी बीमारियां हैं यह समझना कि एक— हम सुरक्षित है, दो— हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। जिन इलाकों में काफ़ी समय से संघर्ष की स्थितियां बनी हुई हैं वहां सरकार और उसके कारिंदों में दंडमुक्ति या हमारा कुछ नहीं बिगड़ेगा का रवैया दिखाई देता है। पिछले कुछ समय से लगातार इस पर चर्चा हो रही है तथापि जिस अहम बात पर ध्यान नहीं दिया गया है वह है कि सभी मर्दों को दंडमुक्ति के इस सोच का पहला पाठ ज़्यादातर हमारे घरों में पढ़ाया जाता है। घरेलू दायरे में शुरु हुआ लड़कियों व औरतों के हक़ छीनने का यह सिलसिला उनके सामाजिक जीवन के अन्य दायरों में भी जारी रहता है।

मर्दानगी, वह धारणात्मक आधार है जो मर्दों के लिए दंड मुक्ति को जायज़ बनाता है और व्यवहार में भी उतारता है। इसके कारण ही वे सोच पाते हैं कि वे सत्ता के कर्णधार हैं और जब वे इस सोच को समाहित करके चलते हैं तो सिर्फ़ अपराध ही नहीं बल्कि हर जगह अगुवाई करना, पुलिस पर पत्थर फेंकना स्वाभाविक रूप से आ जाता है। वे औरतों के ख़िलाफ़ अपराध भी उतनी ही आसानी से कर पाते हैं। असली मर्दानगी वाले मर्द बनने के लिए उनके दिल में नारीत्व के प्रति डर और नफ़रत होनी चाहिए। कहते हैं कि डर आत्मा को नष्ट कर देता है। औरतें कब से मर्दानगी के ज़हरीले असर के बारे में बताती आ रही हैं। अब वक्त है कि मर्द भी समझें कि वे ऐसी व्यवस्थाओं के संरक्षक बन कर अपने साथ क्या कर रहे हैं? ये व्यवस्थाएं उनका भला नहीं करती बल्कि उनका इस्तेमाल करती हैं कड़े अनुशासन लागू करने, लोगों को सज़ाएं देने और हालात को जैसा का तैसा बनाए रखने (वर्दी में या बग़ैर वर्दी के) के लिए। यानी उन्हें हर तरह के अन्याय का संरक्षक बना दिया जाता है।

अपनी इन सेवाओं के बदले में उन्हें घर के दायरे में औरतों को दबाने और अपने से नीचे रखने का हक़ मिलता है। घरेलू और सार्वजनिक की सीमा रेखा को बनाए रखना मुश्किल होता है इसलिए औरतें सार्वजनिक जगहों पर भी उनकी मर्दानगी का निशाना बनती हैं।

इन पिछले दस दिनों ने भारत के बलात्कार मामलों और उनके मुक़द्मों के घिनौने इतिहास को दोहराने का एक मौक़ा दिया है। मथुरा से सोनी सोरी तक, पोशपोरा से मनोरमा तक, रोज़ाना की बेइज्ज़ती और सारे देश में दलित औरतों के बलात्कारों से लेकर बिल्कीस बानो तक की इन भयानक कहानियों को हमने दोबारा पढ़ा और दोबारा जीया है। ज़ाती तौर पर मुझे इन घटनाओं की प्रकृति समझने का एक ही रास्ता नज़र आता है। यह औरतों के ख़िलाफ़ जंग है जिसका लक्ष्य मर्दानगी का झंडा गाड़ना, साम्प्रदायिक बदले लेना और जातियों का दमन करना है।

बलात्कार का संबंध सिर्फ़ संभोग से नहीं है बल्कि लगभग नहीं है। यह एक आक्रमण है जो औरत के शरीर पर उनके संदेश दाग़ देता है। ऐसे संदेश जो न सिर्फ़ उसकी व्यक्तिगत पीड़ा के ज़रिए बोलते हैं बल्कि दिखाई भी देते हैं। बलात्कार इस बात का स्मारक होता कि मर्दगनी का इस्तेमाल करके क्या हासिल किया जा सकता है। जब पुरुष का लिंग अपने बड़े-बड़े काल्पनिक दावों के तराजू पर कमज़ोर पड़ जाता है तो उसके विकल्प की ज़रूरत होती है। सख़्त लोहे की छड़ शायद वह सब करने में ज़्यादा सक्षम होती है जो मर्दानगी पुरुषों को उनके लिंग से हासिल करने के लिए उकसाती है या सपने दिखाती है। लोहे की छड़ का इस्तेमाल, मुंह में बंदूक ठूसना, गुदा में पत्थर घुसाना, चाकुओं से चमड़ी उतरना ये सभी अभिव्यक्तियां हैं जिन्हें भूल से मर्दानगी के संकट का नाम दिया जा रहा है। यही मर्दानगी की प्रकृति है!

नारीद्वेष या औरतों के लिए नफ़रत मर्दानगी की इमारत का अहम आधार है। मर्दानगी एक नियंत्रक व्यवस्था है जो सुनिश्चित करती है कि सभी पदानुक्रम, घड़ी के कांटों की तरह ठीक से काम करें। यह ख़ाकी में भी दिखती है, भगवा में भी दिखती है और लाल में भी दिखाई देती है। यह अपने साथ हमेशा बग़ैर किसी चूक के हिंसा का डर/धमकी लेकर भी आती है। इसका इस्तेमाल पितृसत्ता अपनी नज़र में गुमराह औरतों को सज़ा देने के लिए भी उतना ही करती है जितना सरकारी अधिकारी छत्तीसगढ़ और उड़ीसा की प्रदर्शन करती जनता के साथ करते हैं। इसका इस्तेमाल कश्मीर के विद्रोही लोगों को यह याद दिलाने के लिए किया जाता है कि वे दबे हुए लोग हैं। इसका इस्तेमाल मर्द दिल्ली की सड़कों पर औरतों को यह याद दिलाने के लिए करते है कि वे अपनी हद पार कर रही हैं। इसका इस्तेमाल वामपंथी परम्पराओं के भीतर ऊंचे पदों पर बने रहने के लिए और अपनी महिला कॉमरेडों को बताने के लिए कि उचित वेशभूषा क्या होती है और उन्हें तसल्ली देने के लिए किया जाता है कि उनका वक्त भी आएगा जब पूंजीवाद ख़त्म हो जाएगा।

मुझे माफ़ कीजिए। ये तर्क हज़म नहीं होते। दुख की बात यह है कि जो इसके प्रभाव के चलते कष्ट उठाते हैं वही इसके झांसे में आकर इस नियंत्रण व्यवस्था के जवाब में खुद भी ऐसी व्यवस्थाएं बनाती और अपने दमनकर्ताओं की कार्बन कॉपी बन जाती हैं।

दिल्ली में चल रहा वर्तमान विरोध प्रदर्शन हम सबके लिए सामूहिक रूप से भीतरी सफ़ाई का अवसर बन गया है। एक ऐसा क्षण जब अपनी बात कह पाने और किसी को सुना पाने के लिए रोज़मर्रा औरतों को हिंसा का सामना करना पड़ रहा है। यह मदद के लिए पुकार है! आज़ादी से आने जाने के हक़ के लिए, इज़्जत की ज़िंदगी और बलात्कार के डर से मुक्ति के लिए एक क्रोधपूर्ण अभिव्यक्ति है। लेकिन इससे क्या बदलेगा?

विडम्बना यह है कि यदि इसका आयोजन और नियंत्रण स्थापित राजनीतिक पार्टियों या महिला आंदोलन के कुछ लोगों के हाथों में होता तो शायद ये अपार जनसमूह और भावनाओं का तूफान नहीं उमड़ता। शायद इसका यह असंगठित रूप ही इसके रास्ते की रुकावट बना हो। हालांकि यह कहना मुश्किल है कि यह विरोध प्रदर्शन व्यक्तिगत रूप से किस तरह से लोगों की ज़िंदगी पर असर डालेगा। संचार माध्यम तो सिर्फ़ मृत्युदंड

और बलात्कारियों के लिंग काटने जैसी अतिवादी मांगों पर कैमरे केंद्रित कर रहे हैं। दूसरी ओर कम सनसनीखेज़ लेकिन ज़्यादा अहम और रचनात्मक कथनों और मांगों की चर्चाएं जो रायसीना पहाड़ी से विजय चौक के बीच चल रही हैं, कहीं पृष्ठभूमि में दब गई हैं।

विस्फोट मंथन का समय होता है जब व्यवस्था अचानक अपनी प्रकृति प्रकट करती है। प्रदर्शनकारियों के लिए राजनीतिक सम्पर्क बनाने की संभावनाएं भी उतनी बढ़ जाती हैं। हालांकि हमें इंतज़ार करके देखना होगा कि क्या यह विरोध वैसे सम्पर्क बना पाया। क्या दिल्ली की 23 वर्षीय छात्रा, सोनी सोरी और बिल्कीस बानो की कड़ी से जुड़ पाई? जब यह जुड़ाव पैदा होता है तभी व्यवस्थित रूप से चल रहे अन्याय के ताने-बाने नज़र आते हैं। ठीक वैसे ही जैसे मथुरा बलात्कार के समय महिला आंदोलन को समझ में आया कि क़ानून और न्याय व्यवस्था हिंसा को कम करने वाली एजेन्सियां नहीं हैं बल्कि ये अन्याय, जेंडर भेदभाव और हिंसा के अखाड़े हैं। तभी समझ में आता है कि भगवा टोली ने गुजरात में बिल्कीस और बीसियों अन्य मुस्लिम औरतों को अपना निशाना क्यों बनाया? उनके नेताओं की सोच थी कि बलात्कार के बाद औरत बस एक ज़िंदा लाश रह जाती है। यह ज़िंदगी भर याद दिलाने का ज़रिया हो जाता है कि हमने "तुम्हारी" औरतों को दबाया, कुचला। कश्मीर, मणिपुर जैसे संघर्ष वाले इलाकों में बलात्कार स्थानीय लोगों को प्रतीकात्मक संदेश देता है कि याद रहे कि कौन शासक है और कौन शासित। जब दलित औरतें रोज़मर्रा गाली गलौच, यौन प्रताड़ना और बलात्कार झेलती हैं तो वह उन्हें उनकी हैसियत और दर्जा याद दिलाने के लिए होता है और यह भी कि उन्हें स्थानीय जाति बंधनों से बाहर निकलने के बारे में सपने में भी नहीं सोचना चाहिए। जब दिल्ली की चलती बस में 23 साल की छात्रा का सामूहिक बलात्कार हुआ तो यह दिल्ली की सभी औरतों के लिए याद दिलानी थी कि यह शहर मर्दों का है।

बलात्कार पितृसत्ता के भीतर कई काम करता है लेकिन उनमें एक घटक साझा होता है, वह यह कि मर्द, औरतों को दंड देते हैं। यह शायद पितृसत्ता का सबसे पुराना खेल है। बड़े मुद्दों से विरोध का जुड़ाव बने या न बने लेकिन दिल्ली की लड़कियों को हक़ है कि वे अपना विरोध जताएं और इस देश के मर्दों को याद दिलाएं कि भारतीय संविधान उन्हें समानता की गारंटी देता है।

इंडिया गेट पर युवा लड़के लड़कियों ने कुछ समय के लिए ही सही कुछ अलग ढंग की चीज़ों की झलक दिखलाई कि मर्द होते हुए भी संभव है कि वे औरतों की सुरक्षा के हक़ का समर्थन करें और उदासीन प्रशासन के विपरीत औरतों के साथ कंधे से कंधा मिला कर खड़े हों। अब तक यह प्रदर्शन बहुत महत्वपूर्ण रहा है क्योंकि इसमें बहुत बड़ी संख्या में ऐसी लड़कियों ने भागीदारी की है जो शायद पहली बार सड़कों पर उतरी हैं और उनके साथ सैकड़ों लड़कों ने भी समर्थन और समानुभूति दिखाई है। फिर भी इनमें से बहुत से युवकों को यह समझना होगा कि उन्हें सड़कों पर और धरनों में लीडरी करने की जगह अनुसरण करना सीखना चाहिए। हम सिर्फ़ उम्मीद कर सकते हैं कि इन विरोध प्रदर्शनों ने लोगों को इतनी गहराई तक छुआ होगा कि हमारे देश के घरेलू और सामाजिक दायरे जो विश्व के सबसे ख़राब आंकड़े पेश करते हैं, कुछ तो बेहतर बन सकेंगे।

तत्कालीन संदर्भ में हम प्रार्थना कर सकते हैं कि इन विरोध प्रदर्शनों को ताक़त मिले और ये उन लोगों को अलग-थलग कर सकें जो हिंसक कार्रवाइयों के द्वारा सड़क पर उतरी लड़कियों को फिर से अपने घरों के तथाकथित सुरक्षित दायरों में जाने के लिए धकिया रहे हैं। महिला समूहों तथा अन्य लोगों ने बलात्कारियों के लिए मृत्युदंड या भीड़ का इंसाफ़ जैसी अतिवादी मांगों से जुड़ी समस्याओं का खुलासा किया है। अब यह प्रदर्शनकारियों पर निर्भर करता है कि वे एकजुट होकर प्रतिक्रिया दें और ऐसी मांगे रखें जिनका गहरा और दूरगामी असर हो जैसा मथुरा बलात्कार मामले में महिला आंदोलन ने किया था। नारे और विरोध मार्चों के साथ-साथ घरों, दफ्तरों और राजनीतिक समूहों में जहां तक हो सके मर्दानगी पर सवाल उठाएं ताकि आज जो हज़ारों युवा बाहर निकले हैं वह व्यर्थ न जाए और यह विरोध जेंडर आधारित हिंसा के ख़िलाफ़ स्वतंत्र भारत का सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन बन सके।

राहुल रॉय, *फ़िल्म निर्माता व कार्यकर्ता हैं।*

साभारः काफ़िला, दिसम्बर 28, 2012 अंग्रेज़ी से अनूदित।

कहानी

लड़कियां

मृणाल पाण्डे

जिस दिन हम लोग मां के साथ नानी के घर रवाना हुए, बाबू ने एक सुराही फोड़ी थी पता नहीं जान बूझकर या अनजाने में। पचाक! तमाम पानी-ही-पानी कमरे में फैल गया था। मां ने धोती ऊपर कर पैर रखते हुए, दूसरे कमरे से कान लगाए सुन रही सरू की मां से कहा था कि ज़रा पोंछा ले आये तमाम पानी-ही-पानी हो गया है और उनके पीछे पैर-वैर रपट कर किसी की हड्डी-पसली चटक गयी तो एक और मुसीबत।

मां को वैसे भी हर चीज़ के अंत में मुसीबत ही नज़र आती थी। हम लोग घर में होते तो मुसीबत, स्कूल में होते तो मुसीबत, बीमार होते तो मुसीबत, भले-चंगे उछलते-कूदते होते तो मुसीबत पोंछा लगाती सरू की मां ने सिर तनिक टेढ़ा करके मां से पूछा था कि इस फेरे तो तीनेक महीने रहोगी-ही-रहोगी, न! मां ने, जैसा कि इन दिनों उसकी आदत हो गयी थी, जांघों पर हाथ रखकर वज़न तौला और कांख कर बैठते हुए कहा कि हां, उससे पहले वे लोग आने देंगे थोड़े ही ना। "जा बाहर खेल" यह अंतिम आदेश मेरे लिए था, जो हमेशा की तरह हर गलत मौके पर हैरतअंगेज़ ढंग से किसी कोने में हाज़िर पायी जाती थी।

कमरे से टूटी सुराही का एक टुकड़ा चूसने के लिए सफाई से उड़ा कर ले जाते मैंने सुना कि मां, सरू की मां या जाले लगी छत से कह रही थी इस बार लड़का हो जाता तो उन्हें छुट्टी होती, बार-बार की मुसीबत... सरू की मां ने हमेशा की तरह सिर हिला-हिला कर ज़रूर कहा होगा, "क्यों नहीं, क्यों नहीं।"

ट्रेन में मैंने लड़-झगड़ कर खिड़की के पास की सीट हथिया ली थी और फिर दूसरों को जीभ बिराई- ईऽऽ, मां की नज़र अपनी ओर घूमती पाकर मैंने हिल-हिल कर जपा, "इ से इमली, ई से ईख!" परन्तु मां का ध्यान इस वक्त मुझ पर नहीं टिका। उस पर इस वक्त कई मुसीबतें थीं— बिखरा जाता सामान, डगमगाती सुराही, थकान, हम तीनों। एक स्टेशन पर खूब मिर्ची के समोसे खरीदे। तभी एक औरत ने बगल की खिड़की से अपने बच्चे को सू-सू करायी। मारे घिन के मुझसे समोसा नहीं खाया गया, मैंने मां को दिया। उबले आलू का एक टुकड़ा सीट पर पड़ा था। उसे मसल कर जू-जू कीड़ा बनाकर कुछ देर छोटी बहन को डराया। वह चीखी। मां ने चिकोटी काटी, मैं रोयी। बड़ी बहन ने तब उकता कर कहा, "क्या मुसीबत है!" बड़ी बहन ज़्यादा प्यार करती है। सिर्फ़ वही। बाकी सब गंदे हैं।

स्टेशन पर मामा लेने आए। मैं मामी की बगल में बैठी। मामी पान चबाती थीं तो उनके कान की लवों पर माणिक के बुंदे ऊपर-नीचे होते थे। ड्राइवर जितनी बार जीप का हार्न बजाता, हम तीनों बहनें मिलकर चीखतीं- पोंऽऽऽ। ड्राइवर, हंसा। घर पहुंच कर उसने मुझे और छोटी बहन को गोदी में लेकर जीप से उतारा। उतारने में सुराही फिर लुढ़क गयी, पानी फैल गया, मुझे बाबू की याद आई। और मैंने छोटी बहन की चप्पल को ऐसे दबाया कि वह गिरते-गिरते बची। "मुसीबत की जड़!" मां ने दांत भींच कर ऐसे कहा कि कोई और न सुने और मुझे हाथ से पकड़कर औरों को ऐसी दिखाया, जैसे मुझे संभाला हो, पर सचमुच में इतनी ज़ोर से भींचा कि कंधा दुख गया। नानी के घर आने में हमेशा यही होता है। बाबू तो साथ आते नहीं, और यहां आते ही मां भी मौसियों, मामियों, नानी और पुरानी नौकरानियों के बीच एकदम ही गुडुप। दिन में उसके पास भी जाना चाहें तो कोई-न-कोई टोक देता है, "यहां तो बेचारी को आराम करने दो।" मां भी कैसा बेचारी वाला चेहरा बना लेती है, जैसे वहां हम लोग उसे काट खाते हों! धत्!

नानी के घर में घुसने से चिढ़ होने लगी, मैं झाड़ियों के पास जान-बूझ कर ठिठकी। झबरा कुत्ता आया, उसने मुझे सूंघा, तभी भीतर से किसी ने मेरा नाम लेकर कहा, वह फिर कहां रह गयी! मैं और कुत्ता साथ-साथ घर में घुसे।

नानी, मामा के लड़के को गोद में लिए बैठी थीं। उन्होंने कुत्ते को दुत्कारा। कुत्ता पूंछ नीची कर निकल गया। मुझसे कहा गया कि पैर छुओ, ऐसे नहीं, ऐऽ सेऽ। अरे, लड़की का जनम है और ज़िंदगी भर झुकना है तो सी ऽ ख ही लो। नानी ने मेरी पीठ पर हाथ फेर कर कहा कि उहुंक, ये नहीं बढ़ी लम्बाई में तनिक भी। आठ की कौन कहेगा इसे?

मैंने मामा के लड़के को चिकोटी भर ली। वह बेवकूफ सा तब भी मेरे पीछे घूमता रहा। गोरा-गोरा, प्यारा सा। वह उम्र के लिहाज़ से लंबा जा रहा था। पांच का था, सात का लगता। "कहानी सुनाएगी रात को?" उसने मुझसे पूछा। "नहीं," मैंने कहा और झूठ-मूठ अखबार पढ़ने लगी।

"क्या मुसीबत है!" मां कह रही थी और पड़ोसन नानी कह रही थी कि "लाली की मां, इस बार तो लाली के लड़का ही होगा, चेहरा देखो, कैसा पीला पड़ गया है लली का, लड़कियों की बेर कैसी सुरख गुलाब लगती थी।" "क्याऽ पता, इस बार भी।" मां ने कहा, और बेचारी वाला चेहरा बना कर नाखून खोंटने लगीं। मुझे बाबू की बहुत याद आयी। बाबू से कितनी साफ़ खुशबू आती थी ना! उनकी गोद गुलगुली थी। मां इधर ज़्यादा देर गोद में नहीं लेटने देती, कहती है- "उफ् हांटे-मांटे एक कर डाले, साड़ी मुसड़ दी सो अलग, अब उठ भी, ढेरों काम पड़ा है मेरा। ऊपर से ये मुसीबत औऽऽर। उठ।" नानी ऊपर को हाथ जोड़कर कहती है, "हे देवी, मेरी लाज रखना, इस बार ये मायके से बेटा लेकर जाये।" फिर वे आंखें पोछती हैं।

मैंने कनखियों से बहनों को देखा, वे सो गयी थीं। जहां हम सोये थे, वहां मेरे तखत के ठीक ऊपर एक बड़ी दीवाल घड़ी टिक-टिक करती थी। सब बत्तियां बंद हैं, कमरे में बस चांद का उजाला है। तुलसा दाई मां के तलवों में तेल ठोंक रही है, और कह रही है, "इस बार लड़का होगा तो स्टेनलेस स्टील की ज़री वाली साड़ी लूंगी, हांऽ।"

चांदनी में मां का चेहरा नहीं दीखता, बस ढोल जैसा पेट दीखता है। मां की साड़ी खिसक गयी है। तुलसा कोई दुखती रग छूती है तो मां हल्के से गुंगुआती है। घर लौटती गायों की तरह। "अबकी लड़का हो जाता, तो छुट्टी होती।" वह फिर तुलसा से भी कहती है। और यह भी कहती है कि अब तू जा, तेरे बच्चे बैठे होंगे-तेल की कटोरी चारपाई के खूब नीचे खिसका दीजो, वरना सुबह बच्चों के पैर से ठोकर लगी तो तमाम तेल-ही-तेल... खराब बात। मां आधी छोड़ देती है, तो देर तक कमरे में बात तैरती रहती है। घड़ी की टिक-टिक की तरह। अच्छी बात हमेशा पूरी कहते हैं बड़े लोग, खराब बात आधी ही-ऐसा क्यों? क्याऽ औरत का भाग्य चुप्पी। अरे तीन लड़कियांऽऽ चुप्पी। बाहर एक तारा खूब तेज़ चमक रहा है। क्या ध्रुवतारा होगा! बाबू कहते हैं, मन लगा कर पढ़ोगी तो तुम भी, जो चाहो बन सकती हो, ध्रुव तारे की तरह। लड़का तो नहीं बन सकती पर? मैं ढिठाई से कहती हूं, तो बाबू पता नहीं क्यों धमका देते हैं कि बड़ों के मुंह लगती हो। बड़े लोगों का कुछ भी समझ में नहीं आता। बड़ी बहन कहती है, बड़े लोगों का कभी भरोसा नहीं करना चाहिए, अपनी बात सब खोद-खोद कर पूछ लेते हैं, खुद कुछ नहीं बताते।

कोई हमें कुछ नहीं बताता। यहां ख़ासकर रात को जब हम सब सो जाते हैं तब यहां बड़ों की दुनिया खुलती है, जैसे बंद पिटारा। मैं जाग कर सुनना चाहती हूं पर हर बार बीच में मुझे जाने क्यों नींद आ जाती है। ये आवाज़ किसकी है? खांसी दबाते कौन रो रहा है? छोटी मौसी? "कुत्ते जित्ती इज्जत मेरी नहीं उस घर में।" वह मां के बगल में कहीं कह रही है। कहां? कहां? मैं पूछना चाहती हूं। मां कह रही है कि जी तो उन सबका कलपता है पर उसे निभाना तो है ही। मेरी आंखें बंद होती हैं।

"निभाना क्या होता है मां!" मैं सुबह पूछती हूं। सब लोग नाश्ता कर रहे हैं। मैं कहती हूं कि वो वाला निभाना जो छोटी मौसी को चाहिए। मुझे एक तमाचा पड़ता है, फिर दूसरा; फिर मामी बचाती हैं, छोड़िए भी बच्चा है। "बच्चा-वच्चा नहीं, पुरखिन है," मां का पेट गुस्से से थिरकता है, "चोरी से बड़ों की बातें सुनती है! जाने क्या होगा इसका!"

"तू भी..." बाहर हौदी के पास बैठी बड़ी बहन बीने फूलों को औंधाती कहती है, "सौ बार कहा नहीं, कि चबर-चबर सवाल मत पूछ। पीट-पीट के मार डालेंगे वो लोग तुझे एक दिन, अगर बहुत पूछेगी तो।" मैं रोते-रोते कहती हूं, "खूब पूछूंगी, खूब पूछूंगी, खूब पूछूंगी।" "तो जा के मर फिर।" बड़ी बहन कहती है और समझदारी से नानी के गोपाल जी की माला गूंथने लगती है। ये मेरी लाखों की लक्ष्मी बेटी है, नानी उससे कहती है, मुझे सुनाकर अकसर।

दोपहर में मैं छोटे बच्चों को खौफ़नाक डायनों और भूतों की कहानियां सुनाती हूं जो नीचे वाले अखरोट के पेड़ में रहते हैं, और कहती हूं कि चांदनी रात में ठीक बारह बजे उठकर वहां जाओ तो वे बच्चों के खून से नहाते दिखाई देंगे। नाक से बोलते हैं वो, नाक से! पहले-पहल तो उनकी बोली भी समझ नहीं आती। बच्चे मेरे पीछे-पीछे घर भर में घूमते हैं। जैसे जादूगर के पीछे चूहे।

दोपहर में बड़ी मामी और मां हमें खट्टी-मीठी गोलियां खाने को पैसे देकर भगा देती हैं। उनका कमरा अंधेरा है, कांचों पर हरा कागज़ चिपका है। मामी, मां, मौसियां, नानी सारे कमरे में औरतें-ही औरतें पड़ी हैं। हर घड़ी कुछ-न-कुछ खाती हुई। उनकी मुगदर जैसी बांहें, मोटी-मोटी अधनंगी टांगे, धारीदार पेट। हमें क्यों कहा जाता है, पैर फैला कर मत बैठो टांगें दिखती हैं, हैं?

"तुम सब गायों जैसी लगती हो," मैं औरतों से कहती हूं, पर शायद किसी ने सुना नहीं, फर्श पर तकिया डाले पड़ी छोटी मौसी एक खट्टी गोली हमसे लेकर चूसती हैं और कहती हैं "हद्द हैं जीजा जी भी!" अचानक कमरे में ठहाके छूट जाते हैं। कौन? क्यों? कैसे? मैं चारों तरफ उत्तर को ताकती हूं-पर यहां हमारी किसी को परवाह नहीं, वो सब फिर अपनी बोली बोल रहे हैं। बाहर जाकर मैं खूब ज़ोर से बाहर का दरवाज़ा पीटती हूं। अब शायद मां आकर कहेगी एक मुसीबत और-पर कोई भीतर से बाहर मेरी खबर लेने नहीं आता।

"हटो," सिर के इशारे से हरी की मां कहती है, वह ट्रे में ढेरों चाय के गिलास लिए कमरे में जा रही है- "हटो ये तुम्हारे लिए नहीं हैं, बड़ों के लिए हैं, हटो।" हरी की मां की नाक मेढक जैसी है, और उसकी भौंहें नाक के ऊपर जुड़ी हुई है। वह हंसती है तो मरे हुए चिमगादड़ की तरह उसके गाल लटक जाते हैं। "हटो ना," वह फिर कहती है। "नहीं हटूंगी," मैं अड़ जाती हूं, "पहले कहो लड़कियां अच्छी होती हैं।" "हां-हां, कह दिया, चलो-हटो," हरी की मां कहती है। "नहीं" मैं कहती हूं "ठीक-ठीक से कहो।"

"क्या हो रहा है, हरी की मां?" अंदर से मौसी की चिड़चिड़ी आवाज़ आती है, "चाय क्या अगले साल लाओगी?" हरी की मां मोटी-मोटी भौंहों से मुझे बरजती है, "ये मंझली लली भीतर नहीं.." वह हंसती है तो उसकी मेढक जैसी नाक फुदकती है- फुद्द-फुद्द। अंदर मां मेरा नाम लेकर कहती है कि ज़रूर वही कलपा रही होगी उसे। मेरे प्राण खाने को जनमी है लड़की। कोई कहता है, ऐसी हालत में गुस्सा नहीं करना चाहिए।

देर तक घर के बाहर बैठी हुई हवा में उड़ती गौरैयों को देखती मैं सोचती हूं मैं गौरैया क्यों न हुई? अच्छा, क्या मां गौरैया भी चिड़ियों में लड़कियों को कम अच्छा मानती होगी?

"कहां गयी?" भीतर से किसी की आवाज़ मुझे ढूंढ रही है। मैं जान-बूझ कर दीवार की ओट ही जाती हूं कि मुझे कोई ढूंढ न पाये। कहीं। किसी भी तरह। कहीं से वो जादू की सुपारी मिल जाती जिसे मुंह में रखकर जब चाहो अलोप हो जाओ तो मज़े ही मज़े।

रात को कहानी खत्म कर नानी कहती है कि अब जाओ तुम सब सोने। छोटी बहन सो गयी है। उसे हरी की मां गोद में भीतर ले जाती है। मैं नानी से पूछती हूं, क्या मैं नानी के पास सो सकती हूं? नानी का बदन गर्म और गुलगुला है-नानी की रज़ाई से इलायची-लौंग की बास आती है, नानी के तकिए के नीचे एक टॉर्च रहती है, उसे लेकर बत्ती बुझाने के बाद भी बाथरूम जाओ तो अंधेरे में पैर के अंगूठे में ठोकर नहीं लगती। मामा के सोते लड़के को पास खींचकर रज़ाई उढ़ाती नानी कहती है, "ना भैया, एक तो ये मुझे छोड़कर नहीं जाता, फिर दो-दो को मैं कहां सुलाऊंगी।" तू जा अपनी मां के पास। भला? कल फिर कहानी सुनाऊंगी।" नानी की आवाज़ खुशामद से चुंधी-चुधी है, जैसा बरगलाते वक्त बड़े लोगों की हो जाती है। कमरे में बड़ी बहन बिना मेरी तरफ करवट लिए कहती है, "सुला लिया तुम्हें?" उसका स्वर गुस्से से कांप रहा है। घड़ी बोलती है टिक-टिक। मां की नाक बज रही है। सुलाया तुम्हें? सुलाया तुम्हें? टिक-टिक खर्र-खर्र।

"कहां हो। री लड़कियों?" नानी हाथ में रोली की थाली लिए पीढ़े पर से पुकार रही हैं। नानी के सामने एक कढ़ाई में हलवा पड़ा है— थाली में ढेरों पूरियां। अष्टमी की सुबह है। नानी के आगे चटाई पड़ी है। "आओ, टीका लगवा लो।" नानी आरती में कपूर जलाती है, "आओ, आरती कर दूं तुम्हारी।" मेरी दोनों बहनें और मामा की सुन्दर लड़कियां नानी के आगे फसकड़ा मार कर बैठ गयी हैं। नानी उनके टीका-अक्षत लगाती है, घंटी बजाती हैं रेल के गार्ड की तरह, फिर शंख, पू ऽ ऽ। मैं इंजन बन कर आंगन की मुंडेर पर भागती हूं। कमरे में बास है, आरती-कपूर की बास; हलवे की, घी की बास; फूलों की बास-दे-दे पैसा चल कलकत्ता पू-पू-पू। "आजा बेटा, टीका करा ले, तू तो मेरी कन्याकुमारी है ना!" मैं कहती हूं, "नहीं, मैं तो इंजन हूं!" तभी डर मेरे पेट में मुट्ठी की तरह सख्त होता है। मां मेरी ओर लड़खड़ाती सी आ रही है।

क्रोध से उसका चेहरा भिंचा हुआ है, "मैं बनाती हूं तुझे इंजन, अभी इसी दम।"

"पागल हो रही हो लली?" पड़ोसन नानी, मां का हाथ पकड़कर मुझे आंखों से कहना मानने को कहती है, "बच्चा है वो-कन्याकुमारी ठैरी, आज अष्टमी हुई। देवी का दिन, आज के दिन कन्याकुमारी पर हाथ नहीं उठाना। सराप-पाप लगता है।" मैं धम्म से मुंडेर से नीचे कूदती हूं, मां रो रही है। नानी ने होंठ भींच कर लड़कियों को हलवा-पूरी परसना चालू कर दिया है।

"जा ना," चिड़चिड़ी मौसी कहती है, "क्यों अपनी मां को रुलाती है ऐसे में?"

"जब तुम लोग लड़कियों को प्यार ही नहीं करते तो झूठ-मूठ में उनकी पूजा क्यों करते हो?" मेरी आवाज़ रुलाई से फटती है, गुस्से में मेरे मन में आता है कि आरती का जलता कपूर निगल कर अपने इस दगाबाज़ गले को दाग दूं। "क्यों?" मैं फिर पूछना चाहती हूं, पर रो पड़ने के डर से चुप हूं। मैं रोना नहीं चाहती। इनके सामने, ख़ासकर।

हरी की मां ताज्जुब से पंजा गाल पर टिका कर कहती है, "मां री मां, सुनो तो इसकी बात? लड़की हो के ऐसा गुस्सा?"

नानी लड़कियों को सवा-सवा रुपया दे रही है। "सवा रुपये में बीस खट्टी गोलियां एक साथ ली जा सकती हैं। आने में एक।" इतना दीवार से कहकर नानी मेरी ओर भी रुपये के नोट में लिपटी चवन्नी बढ़ाती है। नानी के अंगूठे की नोक पर रोली का निशान खून का धब्बा जैसा लगता है। मैं दीवार की ओर पीछे हटती हूं। "मुझे नहीं चाहिए इन औरतों का हलवा-पूरी टीका, रुपया।" "मैं देवी नहीं बनूंगी!" मैं चिल्लाती हूं, इतनी ज़ोर से, कि आंगन में बाजरा चुगते कबूतर पर फटफटा कर उड़ जाते हैं। ज्यों कहीं गोली चली हो।

संवाद

बलात्कार और क़ानून

सुनीता ठाकुर

समाज में लगातार बढ़ती बलात्कार की घटनाएं आज हम सभी की चिंता का विषय बन चुकी हैं। समाजशास्त्रीय विश्लेषण की नज़र से बलात्कार ताक़तवर द्वारा कमज़ोर पर नियंत्रण का एक तरीका है, जिसके द्वारा नियंत्रण और दमन का पाठ पीड़ित और पराजित जाति समाज का पढ़ाया जाता है। यह पितृसत्तात्मक दमन नीति का एक ऐसा अचूक हथियार है जो महिलाओं को दैहिक शोषण व दमन द्वारा नियंत्रित और दमित करता है।

बलात्कार महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाला एक संगीन अपराध है। यह एक ऐसा अपराध है जो औरत के शरीर ही नहीं बल्कि उसके पूरे वजूद और आत्मविश्वास पर गहरी चोट पहुंचाता है। शर्म, गुस्सा, अपराधबोध और आत्मग्लानि की भावनाएं उसके जीवन की संभावनाओं को नुकसान पहुंचाती हैं। परिवार और समाज का नज़रिया न्याय की संभावनाओं को खत्म करता है। बलात्कार की कोई भौतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक सीमा नहीं होती। उसका सीधा संबंध सत्ता से है, चाहे वह परिवार में हो, समुदाय में, धर्म या राज्य में। प्रायः इसके पीछे दंड/अपमान/बदला/सबक सिखाना जैसी भावनाएं काम करती हैं।

एक स्त्री स्वयं में एक स्वतंत्र अस्तित्व न होकर किसी परिवार, कुल, वर्ग, जाति या धर्म राज्य सत्ता की धरोहर और सम्मान का प्रतीक बना दी जाती है। पूरे समाज की इज़्ज़त क्योंकर स्त्री की यौनिक शुचिता में आकर समा जाती है— यह सवाल हमें अपने आप से करना होगा। हमें यह समझने की ज़रूरत है कि बलात्कार में औरत का कोई दोष नहीं होता। यह पुरुषों की सत्ता और अहं का परिणाम होता है। इस अपराध को बढ़ाने में जितना सामाजिक सोच व व्यवस्थाओं का दोष है उतना ही मौजूदा क़ानूनी ढांचों का भी है जो बलात्कार को महज एक शारीरिक अपराध के रूप में देखते हैं। बलात्कार सिद्ध करने की ज़िम्मेदारी औरत पर ही छोड़ देते हैं। पूरी व्यवस्था व समाज औरत को ही दोषी मान लेते हैं।

क़ानून में — विरोध किया गया है या नहीं, सशक्त विरोध है या हल्का फुल्का विरोध, विरोध किए जाने के प्रमाण, योनि में लिंग के हिंसात्मक प्रवेश के प्रमाण, वीर्य का पाया जाना, बहुत सी ऐसी बारीक प्रमाणगत शर्तें हैं जिनके साबित न होने या सबूतों के नष्ट या खराब हो जाने की स्थिति में बलात्कार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वाली महिला को न्याय मिलने की संभावनाएं ख़त्म हो जाती हैं। परिवार, समाज और लंबी क़ानूनी प्रक्रियाओं के डर से महिलाएं व परिवार क़ानूनी लड़ाई से अपने कदम पीछे कर लेती हैं। अब अगर इन क़ानूनी संदर्भों को ही देखें तो बहुत से कमज़ोर पक्ष हमारे क़ानून और क़ानून लागू करने वाली एजेंसियों में नज़र आते हैं।

क़ानून लागू करने की महत्वपूर्ण और बुनियादी कड़ी पुलिस तंत्र है। हम सभी जानते हैं कि अधिकार और न्याय की लड़ाई का पहला कदम कितना महंगा साबित होता है। वर्तमान सामाजिक, क़ानूनी स्थितियों से हम सभी परिचित हैं। इन स्थितियों में सुधार लाने के लिए आज हमें अपने भीतर झांककर कुछ गंभीर वैचारिक एवं व्यावहारिक व्यवस्थागत, क़ानूनी बदलाव के निर्णय लेने होंगे।

हमारे क़ानूनी तंत्र में बलात्कार की गंभीरता जितनी कम नज़र आती है सामाजिक संदर्भों में वह उतनी ही जटिल है। वास्तव में देखें तो बलात्कार किसी भी महिला के शरीर और आत्मसम्मान को चोट पहुंचाने की एक हरकत मात्र से ज़्यादा नहीं है। कहीं न कहीं मानें तो यह भी सच है कि महिलाएं जितनी हिंसा अपने शरीर और मन पर अपने ही घरों व परिवारों में हर रोज़ झेलती हैं वह किसी मानसिक और भावनात्मक बलात्कार से कम नहीं है। एक ऐसा भावनात्मक बलात्कार जो अपने

ही सबसे करीबी रिश्तों द्वारा किया जाता है। उस पर भी समाज किसी अन्य द्वारा महिला के किसी शारीरिक अंग को चोट पहुंचाने को इतना गंभीर बना देता है कि वह बलात्कारी के लिए एक सज़ा न होकर महिला के लिए अभिशाप बन जाता है।

यहां मैं बलात्कार की संगीनी को कम करने की कोशिश हरगिज़ नहीं कर रही हूं, बल्कि महिला के साथ होने वाले दोहरे अपमानजनक रवैयों की ओर ध्यान दिलाने की कोशिश करना चाहती हूं जो उसका जीना हराम कर देते हैं और उसे इस घटना को भूलने या उससे बाहर आने नहीं देते। बलात्कार की शिकार महिला के प्रति बेचारगी और तरस खाने जैसे व्यवहार तो बहुत सामने आते हैं मगर दोषी को खोजने और उस महिला को हिम्मत व सम्मान के साथ संघर्ष करने में मदद करने की कोशिशें यदा-कदा ही सामने आती हैं। बलात्कार के बारे में बहुत से मिथक हमारे दिमाग और समाज का हिस्सा आज भी हैं जिन पर विचार करना और सच्चाइयों को समझना बहुत ज़रूरी है।

समाज में स्त्रियों के मुकाबले पुरुष कहीं ज़्यादा यौनिक मुखर व स्वच्छंद होते हैं। स्त्रियों को यौनिक आचरणों और अपनी यौनिकता के प्रति बेपरवाह और ख़ामोश रहना सिखाया जाता है। यही कारण है कि जब भी स्त्रियां ऐसे यौन दुर्व्यवहारों, आक्रमणों, बलात्कार या बलात्कार सम्य स्थितियों का सामना करती हैं तो वे या तो घबरा जाती हैं, या फिर लड़ने से पहले ही हथियार डाल देती हैं। आत्मविश्वास की यह कमी पुरुष बलात्कारियों का काम बहुत आसान कर देती है। हमें यह समझना होगा कि स्त्री होने के नाते हमारा समाज जिस तरह हमें अपनी यौनिकता दबाना और पुरुषों को अपनी यौनिकता साबित करना सिखाता है वहीं कालांतर में किसी हद तक यौन अपराधों का कारण बनता है।

बलात्कार जैसी आपराधिक समस्याओं से पार पाने के लिए हमें पहले अपनी यौनिक सोच को बदलना होगा और स्त्रियों को उनकी यौनिक आज़ादी और पहचान लौटानी होगी। हमारे यहां क़ानून बहुत अच्छे हैं किंतु उनकी स्थिति बेमानी है क्योंकि हमारा समाज महिलाओं को क़ानून का सही इस्तेमाल करने की समझ, ताक़त और आज़ादी नहीं देता। ज़रूरत इस बात की है कि महिलाओं की इज़्ज़त को महज उनकी व्यक्तिगत पहचान और सम्मान का मुद्दा रहने दिया जाए न कि संपूर्ण परिवार, कुल, जाति और राष्ट्र के सम्मान का प्रतीक। अपने इस हक़ को पाने के लिए महिलाओं को खुद ही संघर्ष करना होगा। अपने यौनिक अधिकारों की पहचान, सम्मान और रक्षा का दायित्व उन्हें स्वयं उठाना होगा। जब तक हम स्त्रियां खुद अपनी इस सोच से बाहर नहीं आएंगी कहीं न कहीं हम खुद पुरुषों को अपने यौनिक अधिकारों और सम्मान की दुनिया का खुदा बनाए रखेंगी और जाने अनजाने उनकी सत्ता का खामियाज़ा भुगतती रहेंगी। साथ ही आत्मरक्षा और सजग आत्मनिर्भरता अपनाकर हम स्वतः आत्मनिर्भर और आज़ाद जीवन की ओर बढ़ सकती हैं।

सुनीता ठाकुर, *जागोरी की कार्यकर्ता हैं।*

कविता

चिड़िया

सुनीता ठाकुर

चिड़ियां झुण्ड गईं
दाना देख कर
ज़मीन पर नहीं उतरीं
आज झुबह ही झुना था
ज़मीन पर अकेले मत उतरना
बहुलियों का जाल फैला हो झकता है
पर, चिड़ियां
ज़मीन पर न उतरें
यह कैसे हो झकता है?
वे चौकस हैं, झुंड में हैं
कुछ चिंचिया रही हैं
झचेत करती सी
दाना चुग रही हैं
उड़ रही हैं!

लेख

पितृसत्तात्मक नियंत्रण रेखा का विरोध

कविता कृष्णन

"चुनींदा मध्यवर्गीय नाराज़गी", "चमड़ी उधेड़ने वाली भीड़ की मानसिकता", "मर्दानगी भरी सुरक्षा", "औरतों की वैयक्तिकता और बलात्कारियों के लिंग काटने की मांग करने वाले पोस्टरों की एक साथ मौजूदगी।"

यौन हिंसा के ख़िलाफ़ जारी आंदोलन के बारे में कुछ शंकालू लोगों ने ऐसी ही बातें कहीं। महिला आंदोलन और छात्र आंदोलन के जो कार्यकर्ता इस आंदोलन से जुड़े उन पर तोहमत लगाई गई कि वे दरअसल में एक उत्तेजित भीड़ के ख़तरनाक जमावड़े को गुलाबी चश्मे से देख रहे हैं।

एक जन आंदोलन में दो विरोधी चेतनाओं की मौजूदगी के आसार हमें इतना परेशान क्यों कर देते हैं? इसी सवाल के बारे में सोचते हुए मैं इतालवी मार्क्सवादी अन्तोनियो ग्रेमसी तक पहुंची जिसने इस विरोधी चेतना के बारे में लिखा है:

"भीड़ में मौजूद सक्रिय इंसान ज़मीन पर एक व्यावहारिक कार्रवाई करता है लेकिन उसके पास कार्रवाई के पीछे की कोई स्पष्ट सैद्धान्तिक सोच नहीं है। परन्तु फिर भी उसके पास दुनिया की समझ और उसे बदलने की सोच तो है। उसके भीतर की सैद्धान्तिक चेतना दरअसल उसकी कार्रवाई से बिल्कुल उलट भी हो सकती है। शायद हम यह कह सकते हैं कि उसमें दो भिन्न सैद्धान्तिक चेतनाएं हैं (या दो विरोधी रूपों वाली चेतना है)। एक चेतना तो वह है जो उसकी कार्रवाई में झलक रही है, जो दुनिया की हकीकत बदलने की कोशिश में उसे उसके साथियों के साथ जोड़ती है। लेकिन उसके ही अंदर एक चेतना और भी है जो स्पष्टता का सिर्फ़ सतही आभास देती है या शब्दों में दिखती है। वह उसे अपने अतीत से मिली है, जिसे उसने बग़ैर सोचे-परखे आत्मसात कर लिया है।"

यह विरोधाभास, यह झगड़ा वह मिट्टी है जिससे राजनीतिक रूपांतरण और मूलभूतवाद बनता है। मैंने इसे सड़कों पर घटित होते देखा है। एक घटना याद आती है। 29 दिसम्बर— जिस दिन उस युवा, जांबाज़ लड़की ने अपने जख़्मों के चलते दम तोड़ दिया था। हम सब शोक मनाने जंतर-मंतर पर इकट्ठा हुए। हमने शुरूआत में ही तीखे, हिंसक नारे न लगाने की प्रार्थना की पर एक छोटे समूह ने हमारा विरोध किया। वे जंतर-मंतर की कार्रवाईयों पर कब्ज़ा करना चाह रहे थे। हम कुछ दूर खिसक गए। नम आंखों के साथ चुपचाप ज़मीन पर बैठी कुछ लड़कियों के साथ बैठ गए। जैसे-जैसे लोग गंभीरता और चिन्तन के माहौल वाली इस जगह की ओर खिंचते गए, दुख और चुप्पी के साथ बैठे लोगों का घेरा बढ़ता गया।

कुछ देर में बड़े सहज ढंग से वहां आज़ादी के गीतों और नारों का स्वर उठने लगा। दोपहर तक युवा लड़कियां अपनी सोच के बार में बताने लगीं। उसी समूह में से एक युवक मेरे पास आया और बातें करने लगा।

"मैं इस विरोध प्रदर्शन में रोज़ आ रहा हूं," उसने कहा। "मैं हिंसा से औरतों की सुरक्षा के इस संघर्ष का पूरा समर्थन भी करता हूं लेकिन यहां लगाए जा रहे आज़ादी के इन नारों से मुझे दिक्कत है। अगर मेरी बहन को कुछ भी पहनने और किसी के भी साथ जाने की आज़ादी हो तो क्या वह ख़तरे में नहीं पड़ जाएगी? आज़ादी का विचार मुझे परेशान करता है।" उसकी यह ईमानदार स्वीकृति मुझे अच्छी लगी।

मेरे पूछने पर उसने माना कि इस आंदोलन में हिस्सा लेने से पहले उसे याद नहीं कि कभी भी वह इतना परेशान हुआ था।

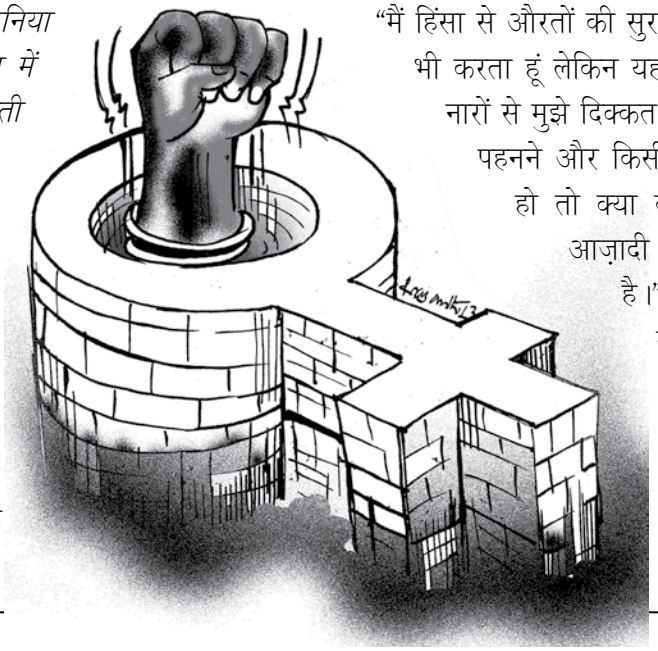

समाज में औरतों व मर्दों के लिए अलग-अलग नियम कायदे उसे सामान्य और सही लगते थे।

"परेशानी की इस भावना को गले लगाओ", मैंने कहा "और देखो यह तुम्हें कहां ले जाती है।"

आख़िर उसका परेशान होना पितृसत्तात्मक विचारों की इमारत में एक दरार थी। एक ऐसा लम्हा था जब पितृसत्तात्मक अचलता में कुछ हलचल हुई, कोई शंका पैदा हुई। ऐसे और कई मौके सामने आए हैं। काफ़िला के शुद्धबत सेनगुप्ता का दर्ज किया एक उदाहरण मुझे सबसे अधिक पसंद है। एक आदमी यमराज का मुखौटा पहनकर मृत्युदंड का विरोध करने वालों के भाषणों को सुनता है फिर वह अपना मुखौटा उतार फेंकता है, पोस्टर फाड़ देता है और दूसरी तख्ती उठा लेता है जिस पर लिखा है- "मृत्युदंड हल नहीं है।"

जब आज़ादी के नारों ने न्याय के नारों की व्याख्या की शुरुआत में 'हमें इंसाफ़ चाहिए' नारे का मतलब था, बलात्कारियों के लिए सज़ा की मांग, शायद फांसी भी। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे सभी दलों के सांसद भी आंदोलन से जुड़ते दिखाई देने में खुश थे। जब तक इंसाफ़ का मतलब मृत्युदंड था, जब तक औरतें अपनी सुरक्षा की मांग कर रही थीं सरकार या सांसदों में किसी को कोई समस्या नहीं थी। लेकिन जैसे ही 'हमें चाहिए आज़ादी' के नारों ने इंसाफ़ का दायरा फैलाया और लड़कियों ने तख़्तियां उठा लीं जिन पर लिखा था— *वो करें तो स्टड, मैं करूं तो स्लट; मुझे कपड़ों का शऊर मत सिखाओ; उन्हें सिखाओ कि बलात्कार न करें।*

माहौल गर्माने लगा और आज़ादी के इतने विभिन्न रूप पूरे जोश के साथ नारों में ढलने लगे।

मांग हो रही थी— पैदा होने की आज़ादी, दूध पिलाए जाने की आज़ादी, पढ़ने की आज़ादी, काम करने की आज़ादी, अपनी संपत्ति और कमाई पर नियंत्रण की आज़ादी, अपनी पसंद की पोशाक पहनने की आज़ादी, प्यार करने, जाति, लिंग से परे जीवनसाथी चुनने की आज़ादी, बेटी को जन्म देने की आज़ादी, अपनी यौनिकता पर नियंत्रण की आज़ादी, हिंसक और असंतुष्ट शादी से मुक्त होने की आज़ादी, घर में और सार्वजनिक जगहों पर हिंसा के डर से आज़ादी, सरकारी दमन और हिरासत में हिंसा के डर के बग़ैर विरोध प्रदर्शन की आज़ादी।

क्या ये सभी मांगे इंसाफ़ के तहत नहीं आतीं? लेकिन इन नारों के साथ ही शासन और सांसदों के मुखौटे उतर गए। आंदोलनकारियों के साथ उनकी दिखावटी एकता की धज्जियां उड़ गईं और सामने आई औरत के प्रति निरी कठोर और द्वेषपूर्ण प्रतिक्रिया। उसके पीछे उनकी सोची समझी राजनीतिक मंशा भी थी। वे औरतों की समानता और स्वतंत्रता के इस आंदोलन पर पलटवार करने वाले पितृसत्तात्मक समूहों को संबोधित और एकजुट कर रहे थे। ज़ाहिर है औरतों की आज़ादी के नारे दुखती रग को छेड़ रहे थे क्योंकि सत्ता और पितृसत्ता के बीच करीबी रिश्ता है।

पितृसत्ता तथा औरत की गुलामी के चलते ही तो घर में उसकी बिना दाम की मेहनत का, राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन जैसी नौकरियों में और बराबर काम के लिए औरत को कम मेहनताना देने जैसा आर्थिक शोषण संभव हो पाता है। भारत में नई उदार नीतियों ने औरतों का जीवन बदतर बना दिया है। इसलिए नहीं की उन्होंने औरतों पर अति-आधुनिकता थोपी है बल्कि इसलिए कि वे स्वस्थ और सशक्त आधुनिकता लाने में असफल रही हैं। उसके स्थान पर इन नीतियों ने दमन के मौजूदा ढांचों को मज़बूत किया है और शोषण व मुनाफ़े को बढ़ावा दिया है।

अब आज़ादी के इस आवेग को दबाने की तथा सुरक्षा के नाम पर औरतों पर पितृसत्तात्मक बंदिशें फिर से लागू करने की कोशिशें हो रही हैं। मोबाइन फ़ोन के इस्तेमाल पर रोक, कपड़ों के नियम-कायदे, स्कूल में लड़कियों द्वारा लड़को से बातचीत पर पाबंदी, लड़कियों के छात्रावासों में निश्चित समय के बाद बाहर न रहने संबंधी सख़्ती जैसी खबरें देश भर से आ रही हैं।

पर इस बार इस आंदोलन की बदौलत इन पाबंदियों पर ज़ोर-शोर से बहस हो रही है और विरोध किया जा रहा है। दिल्ली विश्वविद्यालय के एक मुख्य कॉलेज की बैठक में हॉस्टल की लड़कियों ने, उनके बाहर रहने की समय सीमा घटाए जाने की हिदायत को चुनौती दी और विद्रोह किया। उनका सवाल था। बलात्कार मर्द करते हैं तो ताले में बंद लड़कियों को क्यों किया जाए?

आज़ादी की यह पुकार किसी भी तरह से एक शहरी शोशा नहीं है। कुछ महीनों पहले हरियाणा और बिहार के देहात में प्रमुख जाति के लोगों ने स्कूल की एक दलित छात्रा के साथ सामूहिक बलात्कार किया था। हमारे कार्यकर्ताओं को जानकारी मिली कि बड़ी संख्या में स्कूली लड़कियों ने विरोध प्रर्दशनों में हिस्सा लिया। इन लड़कियों का सबसे बड़ा सरोकार यह था कि यौन हिंसा के खतरे के चलते उन्हें स्कूल और कोचिंग कक्षाओं में जाने से रोका जा सकता है।

अनेक लोगों के लिए यह आंदोलन सहानुभूति के साथ शुरू हुआ था। उसके पीछे भावना थी कि 'उस बस में मैं भी हो सकती थी'। हर गुज़रते दिन के साथ सहानुभूति का यह दायरा बढ़ता जा रहा था। अनेकों प्रदर्शकारियों से हम पहली बार मिल रहे थे। सोनी सोरी, कुनान पोशपोरा, प्रियंका भोटमागे, आसिया, नीलोफर, और न जाने कितनी संघर्षरत औरतों की बातें कीं जा रही थीं। गुजरात, पूर्वोत्तर राज्यों, हरियाणा के हिरासत में हुए बलात्कार और यौन हिंसा पर विरोध जताया जा रहा था।

इस जन-आंदोलन की एक ख़ासियत यह है कि इसने हमारे देश में औरतों के लिए खींची गई लक्ष्मण रेखाओं, नियंत्रण के दायरों को हमारे सामने उजागर कर दिया है। अच्छी बात यह है कि आज लोगों को ये लक्ष्मण रेखाएं, ये नियंत्रण के पैमाने, जायज़ और सामान्य नज़र नहीं आते। वे अब हर उस नियंत्रण, हर उस दमन की कोशिश को चुनौती देने के लिए तैयार हो गये हैं जो उन्हें पितृसत्ता की ओर वापस ढकेलना चाहती है।

कविता कृष्णन, *एपवा की सचिव हैं।*

कविता

चादर

अनामिका

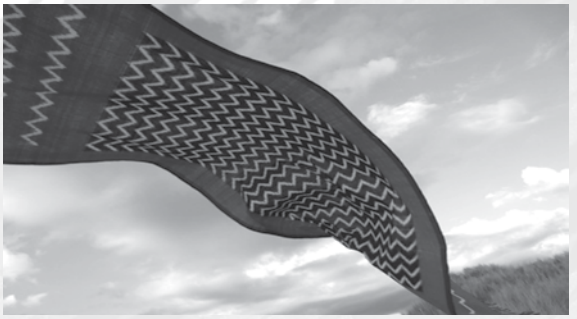

मेरी मां
अक्सर ही सोते में
मुझको उढ़ा देती है चादर!
डर लगता है उसको मेरी
बेपर्दगी से!
मुझे तो
पता भी नहीं,
क्या मेरी नींद
मुझे बेपर्द करती है?
बेपर्द करते हैं
मुझको मेरे ख्वाब?
क्या उनमें
एक सियर गलास-सा लगा है
या फिर कोई वीडियो कैमरा
जैसा कि
भीड़-भरी दुकानों में होता है
आपके ईमान पर
सन्देह फरमाता
'आप वीडियो कैमरे की
निगाहों में हैं।'
यह वक्त कैसा है, ख्वाजा—
सबको
सब पर
शक-सा रहता है!
बाज़ार में
घर में और दोस्तों में भी
एक शर्तनामा-सा बंटता चलता है!
शर्तों के परे
क्या नहीं कुछ भी?
कुछ भी
नहीं होता क्या यों ही
उम्मीदों, तर्कों या
शर्तों के पार
और बेमतलब?
जाड़ों की बारिश के
पहले हिलकोरे से
चट खिल जाती हैं भटकोइयां
जौ-गेहूं के खेतों में जैसे बेमतलब?
रोज़ रात धुन्ध घनी
चादर उढ़ा जाती है
भटकोइयों पर!
क्या धुन्ध होती है
भटकोइयों की मां
जो उनके ख्वाबों के
बेपर्द होने से डरती है?
एक रात जब अपने
अंतिम सफ़र से मैं लौटूंगी—
डगमग रहेंगे मेरे पांव
टूटे जहाज़ों के ही पाल
मेरी मां
जल्दी-से जल्दी
उढ़ा देगी मुझको,
उद्दाम लहरें और वक्त के थपेड़े
मेरे समूचे बदन पर, क्योंकि—
छोड़ चुके होंगे
नीले-हरे-बैंगनी बोसे—
मां को इसकी जल्दी होगी—
वे ढंक जाएं
और इसका होगा संतोष
कि कोई भी जंग
लड़की ने
यों ही तो
बैठे-बिठाए नहीं हारी!

संवाद

आख़िरकार अभिव्यक्ति का अधिकार है किसका?

मृणाल पाण्डे

ऐसी कितनी ही बातें होती हैं जिनके विषय में हमें जानकारी होनी चाहिए पर हमारी ख़्वाहिश यही रहती है कि उनके बारे में पता न होता तो ही अच्छा था। हर उम्र की महिला और बच्चों के साथ होने वाली घरेलू हिंसा की मौजूदगी इनमें से एक है। इस प्रकार के अमानवीय व्यवहार को सीखने व जायज़ ठहराने के लिए अश्लील साहित्य (पोर्नोग्राफ़ी) का इस्तेमाल एक ऐसी ही दूसरी बात है।

हम एक लम्बे अर्से से इन दोनों बातों के आपसी संबंध को नकारते रहे हैं जबकि इस बात के पुख्ता सबूत मौजूद हैं कि हिंसात्मक यौनिक दमन के आदर्श पुरुष घर में सीखते हैं और फिर समस्त स्त्री जाति की कमतरी को बढ़ावा देने वाले विचारों को अश्लील साहित्य देख-देखकर पालते हैं। हाल ही में होने वाले कुछ नृशंस सामूहिक बलात्कार के मामले एक ऐसा सच्चाई की शिनाख़्त करते हैं जो नारीवादी और अपराध विशेषज्ञ एक लम्बे समय से दोहरा रहे हैं: युवतियों और बच्चियों के साथ हिंसक व्यवहार करने वाले अक्सर इलाके के जाने-माने गुंडे और आदतन अपराधी पुरुष होते हैं। इस तरह के पुरुष अपने साथियों के साथ मिलकर शराब पीते हैं, अश्लील साहित्य देखते हैं, जो उन्हें हिंसक, परभक्षी व्यवहार करने के लिए उकसाने में मदद करता है। इस सबके बावजूद जब भी शराब की बिक्री और अश्लील साहित्य पर प्रतिबंध लगाने की बात उठती है तो भाषा व अभिव्यक्ति तथा उत्तरजीविका कमाने के बुनियादी संवैधानिक अधिकारों की दुहाई देते हुए विरोध के स्वर उठ जाते हैं।

एक मिनट के लिए ज़रा सोचिए— अगर किसी एक जाति या नस्ल के विशिष्ट वर्ग के लोगों पर हिंसा या हत्या को वैध करार देने वाली प्रचार सामग्री खुलेआम मिलने लगे तो क्या हमें धक्का नहीं पहुंचेगा जबकि हम यह भली-भांति जानते हैं कि इस तरह के प्रचार को जाति और जातीय हिंसा की भूमिका बनाने और फिर इसे ज़ायज़ ठहराने के लिए उपयोग में लाया जाता है। तो फिर औरतों व बच्चों के साथ हिंसा के अमानवीय तरीक़े दर्शाने वाले अश्लील साहित्य की आसान उपलब्धि को इससे अलग क्यों रखा जाए और इसकी बिक्री को चालू रखने के लिए संविधान की धारा 19 का हवाला क्या दिया जाए?

क्या यौन व्यापार को वैधता प्रदान करने की मांग को इस आधार पर सही ठहराया जा सकता है कि 'बुरी औरतों' की आसान मौजूदगी पुरुषों की प्राकृतिक यौन आक्रामकता को एक 'निकास' प्रदान करके 'अच्छी औरतों' के लिए सुरक्षा कवच का काम करेगी? क्या एक उदारवादी राज्य में अश्लील साहित्य को खुली छूट दी जानी चाहिए जबकि उसकी कीमत वो महिलाएं चुका रही हैं जिन्हें अपने घरों की चारदीवारी के भीतर खुलकर बोलने की आज़ादी भी नहीं है?

उत्तेजक बनाम अश्लील साहित्य की बहस को लेकर उदार सिद्धांतवादी, फिर चाहे वे पुरुष हों या महिला इस कदर उलझ कर रह गए हैं कि वे इस ओर कोई ध्यान ही नहीं देते कि किस प्रकार अश्लील साहित्य उसी राज्य व नागरिक समाज से पुरुषों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर मौन सहमति का फ़ायदा उठाता है जिनका कहना है कि पीड़ित द्वारा मुंह खोलने पर ही वे आरोपी के ख़िलाफ़ कार्रवाई करने के बारे में सोच सकते हैं। पुलिस की लापरवाही से शर्मसार होकर सड़कों पर बेहतर सुरक्षा की मांग लेकर उतरने वाले लोग भी खंडित मनस्कता लिए नज़र आए जब उन्होंने यौन हिंसा का शिकार हुई महिलाओं और बच्चों की तरफ से अपराधियों के ख़िलाफ़ राज्य द्वारा तत्काल हस्तक्षेप और कठोर प्रतिशोध की मांग (मुजरिम को सख़्त से सख्त सज़ा मिलनी चाहिए! चौराहे पर फांसी देनी चाहिए!) बुलंद की। वे यह भूल बैठे कि इसी सरकार को "निकम्मा" मानकर वे उनके इस्तीफ़े की भी मांग कर चुके हैं।

सच तो यह है कि राज्य जैसा कि यौन हिंसा पीड़ित अनुभव करते रहे हैं, एक स्वतंत्र स्थाई सच्चाई नहीं है। उसका एक स्पष्ट चेहरा व आवाज़ है— उस एसएचओ के रूप में जो पीड़ित बच्ची के पिता को चुप रहने के लिए रिश्वत देने की कोशिश करता है, या वो एसपी जो एक युवा महिला विरोधकर्ता को थप्पड़ मारता है, एक नेता जो महिला विरोधकर्ताओं के रोष को "लिपी-पुती औरतों" की उपाधि देते हुए नज़रअंदाज़ कर देता है अथवा एक दूसरा सांसद मंत्री जो कहता है कि जब तक कोई औरत पुरुषों को अपनी "आंखों से न्यौता न दे" तब तक उसके साथ कोई छेड़छाड़ नहीं हो सकती!

इस तरह के हाकिमों के सामने क्या सकारात्मक राज्य हस्तक्षेप की कोई भी पुरज़ोर मांग न्याय के तराजू को औरतों व बच्चों के हक़ में डिगा सकती है? क्या पीड़ित और उनके परिवारों को यह विश्वास करने के लिए मनाया जा सकता कि

वे राज्य को अपनी सशक्तता और दर्जे में बदलाव का प्राथमिक साधन समझें? इसी सब के नतीजतन मीडिया द्वारा राज्य पर वर्मा कमेटी के सुझावों को मानकर आपराधिक क़ानून में संशोधन और कार्यान्वयन के लिए एक विशाल दबावपूर्ण अभियान चलाए जाने के बावजूद महिलाएं व लड़कियां आज भी अपनी सुरक्षा को लेकर भयभीत हैं और यौन भक्षकों की शहर की सड़कों और अश्लील साहित्य तक स्वतंत्र पहुंच बरकरार है।

यह सच है कि जेंडर सामाजिक ढांचे की प्रथम रचना है पर हमारे जैसे देश में इसका इतिहास बहुत लम्बा व प्रजातंत्र से पहले का है। आज भी बहुत से लोग बलात्कार की घटनाओं में बढ़त के लिए नई तकनीकों के माध्यम से अश्लील साहित्य के वितरण को दोष देते हैं। वे हमें याद दिलाना चाहते हैं कि एक सदी पूर्व इस पाश्चात्य ढांचे और इसकी नई जानकारी प्रदान तकनीकों के जन्म से पहले हम एक सभ्य सुरक्षित समाज थे। पर वे गलत हैं। टीवी और डीवीडी बेचने वाली दुकानें जला देने से कुछ फ़ायदा नहीं होगा।

भारत में कमज़ोर महिलाओं और बच्चों के प्रति हिंसक और अमानवीय व्यवहार का इतिहास काफी पुराना है। लगभग पचास वर्षों पूर्व कुख्यात ठगों के गैंग हमारे असुरक्षित हाईवे पर घूमते दिखाई पड़ते थे, अनचाही विधवाओं को पति की चिता पर न जलाए जाने पर काशी व वृंदावन रवाना कर दिया जाता था, ग़रीब परिवारों के बच्चे उनके परिवारों द्वारा सबसे ऊंची बोली लगाने वाले को नीलाम कर दिए जाते थे, मुफ़्त बेगार करने वालों को भारत के हर क्षेत्र में ज़मींदारों व राजाओं के रौंगटे खड़े करने वाले अत्याचारों को सहना पड़ता था।

कालेज जाने वाली लड़कियों की तीन पीढ़ियों की कहानियां दर्शाती हैं कि भारत के हर समुदाय में यौन उत्पीड़न के दर्दनाक वाकये रोज़ाना सुनाई देने वाली घटनाएं हैं। मैंने अनेक ऐसे किस्से सुने हैं जिनमें पहले संयुक्त परिवारों में रहने वाली युवा लड़कियों व विधवाओं को हमेशा किसी पुरुष रिश्तेदार व परिवार के दोस्त की वहशी नज़रों के साये तले ज़िन्दगी बसर करनी पड़ती थी। कुछ लड़कियों को उनकी सजग मांएं वहशी पारिवारिक पुरुषों से बचाकर रख पाती थीं, कुछ के साथ ऐसा नहीं था। पर यौन उत्पीड़न की बात अपनी मां या परिवार के बुजुर्गों से कहने पर सबको एक ही हिदायत दी जाती थी— परिवार के प्रतिशोध और कुंवारे रह जाने के सामाजिक कलंक के डर से वे अपनी ज़ुबान पर ताला लगाने को बाध्य रहें। सच तो यह है कि चूंकि औरतों पर पुरुषों का दमन ज़्यादातर यौनिक होता है इसलिए बलात्कार और अश्लील साहित्य कोई विकृति नहीं है बल्कि यह एक ऐसा उग्र उदाहरण है जिसमें पुरुष बारम्बार औरतों को इस्तेमाल करेंगे और साथ ही उन्हें उस राज्य में अपनी सही जगह दिखाएंगे जिसे उन्होंने अपनी छवि में गढ़ा और नियंत्रित किया है।

चूंकि आधुनिक राज्य पुरुष सत्ता पर निर्मित है जो महिला कामगरों, मांओं, वोटरों की सत्ताहीनता से पोषण पाता है लिहाज़ा औरतों पर पुरुष आधिपत्य स्पष्ट रूप से सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक तौर पर नज़र आता है। कुछ समय पहले ही लोक सभा में विपक्ष की नेता को भी कहते सुना गया कि हाल ही की फेर-बदल मीटिंग में बीजेपी की सर्वोच्च निर्णय समिति में एक भी महिला को शामिल नहीं किया गया। चूंकि भारत में लिंग निरपेक्ष कुछ भी नहीं है और राज्य, थाने से लेकर जंतर-मंतर और विधान सभाओं तक पुरुष सत्ता की अनिवार्य अभिव्यक्ति के रूप में दिखाई पड़ता है, तो वह औरतों के हितों का कैसे ध्यान रख सकता है जिनके नृशंस दमन, सत्ताहीनता और प्रतिभूति ख़ामोशी पर उसके खरबों की कीमत वाले यौन और अश्लील साहित्य उद्योग पनपते हैं?

"पहले पुलिस के पास जाओ" पालिका बाज़ार में अश्लील साहित्य विक्रेता महिला विरोधकर्ताओं पर दहाड़े। वे जानते हैं कि उन्हें मदद कहां से मिलेगी। वे इस बात के प्रति भी सजग हैं कि चाहे क़ानूनी तौर पर राज्य औरतों के अश्लील चित्रण को ठुकराए परन्तु अश्लील साहित्य बिक्री की उन्हें इजाज़त ज़रूर मिल जाएगी, अगर वे पुलिस को आश्वस्त करें कि यह सामग्री सिर्फ़ व्यस्कों को बेची जाएगी।

विडम्बना तो यह है कि वे थानेदार जो लड़कों को 'लड़के ही बने रहने देते हैं', देर रात में सड़कों पर घूमती लड़कियों, पुरुष या महिला मित्रों के साथ पबों में बैठी, अपनी आवाजाही को आसान बनाने के लिए आरामदायक छोटे कपड़े पहने लड़कियों, मशहूर फ़िल्मों में जुर्म को उकसाने वाले, दमन व समर्पण वाले उत्तेजक सीन और भड़कीले "आईटम" गीतों को सबके लिए मनोरंजक समझते हैं। जब तक इस खंडित मनस्कता ग्रस्त राज्य के मूल सिद्धांत पर सवाल नहीं उठेंगे तब तक क्या हम यह मान सकते हैं कि उदार न्यायाधीशों द्वारा संशोधित क़ानून को पूरी तरह लागू करने से समस्या हल हो जाएगी और औरतों के पक्ष में अधिक बेहतर क़ानूनी दलीलें पेश की जा सकेंगी जो हमारे सांसदों से लेकर पुलिस और अदालतों सबको उनके तरीक़ों की खामियां दिखाएंगी?

मृणाल पाण्डे, *हिन्दी साहित्य जगत की मशहूर पत्रकार व लेखिका हैं।*

लेख

आज बारिश कल मूसलाधार

भारत में महिला अधिकारों के पक्ष में बदलाव की हवा

रूरी स्यालेन्द्रावती

पिछले साल भारत में एक युवा मेडिकल छात्रा के साथ हुए घिनौने सामूहिक बलात्कार ने सिर्फ़ उसके देश के लोगों को ही धक्का नहीं पहुंचाया बल्कि पूरी दुनिया में बदनामी हासिल की। इस मामले ने सारे विश्व का ध्यान भारत की एक बड़ी सतूत समस्या की तरफ, इस तरह से खींचा है जैसा पहले कभी नहीं हुआ। वह है 'हिंसा और ग़रीबी का स्त्रीकरण।'

'ग़रीबी का स्त्रीकरण' शब्दावली को सत्तर के दशक के अंत में डायना पियर्स ने गढ़ा था जिसे अनुसार औरतों के हाथों में आर्थिक संसाधन नहीं के बराबर थे और मर्दों व उनकी मज़दूरी के बीच का अंतर बढ़ता चला जा रहा था। *यूनिफ़ैम* का कहना है कि ग़रीबी रेखा के नीचे जीने वाले लगभग 70 प्रतिशत लोग औरतें हैं।

भारत के संदर्भ में ग़रीबी और यौन हिंसा ने औरतों के ख़िलाफ़ आपस में गठजोड़ कर लिया है। *वर्ल्ड इकनॉमिक फ़ोरम* ने औरतों की आर्थिक भागीदारी के नज़रिए से हमारे देश को 123वां स्थान दिया है। इसके अलावा पिछले एक साल में सिर्फ़ दिल्ली में ही बलात्कार के 700 मामले दर्ज किए गए।

दिल्ली 160 लाख की आबादी की तुलना में यह संख्या कम लग सकती है लेकिन यह याद रखना ज़रूरी है कि ये सिर्फ़ उन औरतों के आंकड़े हैं जिनमें इतनी हिम्मत थी कि अपने ऊपर हुए भयानक हमलों की रिपोर्ट कर सकें। हाल में वाशिंगटन पोस्ट ने बताया कि यौन हिंसा की अधिकतर शिकार औरतें अनेक कारणों से अपराधियों के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज करने से डरती हैं। उनमें से एक कारण है भारतीय पुलिस अधिकारियों का असहयोग और असम्मान भरा बर्ताव।

वैसे यौन हिंसा के लिए कोई अलग से खांचा नहीं है, यह भारत में औरतों के ख़िलाफ़ होने वाली सभी हिंसाओं का एक छोटा सा हिस्सा है। अनुमान है कि करीब 20 लाख औरतें उनके साथ होने वाली हिंसा और भेदभाव के चलते जान गवां देती हैं। इनमें से 25,000 से 1,00,000 लाख तक औरतें हर साल दहेज संबंधी झगड़ों के कारण मारी जाती हैं। अनेक औरतें भयानक प्रतिशोध में ज़िन्दा जला दी जाती हैं। ये सभी आंकड़े बताते हैं कि पितृसत्तात्मक और स्त्रीद्वेषी समाज में औरतों के ख़िलाफ़ भेदभाव की भावना किस क़दर गहराई तक घर कर चुकी है।

आर्थिक पलटवार

ग़रीबी और हिंसा का स्त्रीकरण लगातार जारी रहने से भारतीय अर्थव्यवस्था पर उसके बड़े घातक प्रभाव पड़ रहे हैं।

भारत की लगभग 127 करोड़ की आबादी में आधी से ज़्यादा औरतें हैं लेकिन उनमें से सिर्फ़ 25 प्रतिशत उत्पादन क्षेत्र में जुड़ी हैं। सरल भाषा में कहें तो भारत अपनी आधी से अधिक श्रमशक्ति को पूरी तरह से पूंजी से नहीं जोड़ पा रहा है। हमारा देश अपने क्षेत्रीय प्रतिद्वन्दी चीन से काफ़ी पीछे है

जिसने तुलानात्मक रूप से आश्चर्यजनक दर प्राप्त कर ली है। चीन ने 70 प्रतिशत महिला श्रम की भागीदारी सुनिश्चित कर ली है।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित एक पर्चे के अनुसार इसके चार प्रकार के आर्थिक परिणाम होते हैं—

- *प्रत्यक्ष मूर्त लागत*
- *अप्रत्यक्ष मूर्त लागत,*
- *प्रत्यक्ष अमूर्त लागत*
- *अप्रत्यक्ष अमूर्त लागत*

- *प्रत्यक्ष मूर्त लागत* वह वित्तीय ख़र्च है जो सीधे तौर पर हिंसा और ग़रीबी से जुड़ा है। जैसे अस्पताल में इलाज। इसमें ऐसे खर्च भी शामिल हैं जैसे मनोवैज्ञानिक पुनर्वास खर्च, अपराधियों को सज़ा दिलवाना चाहने वाले पीड़ितों को न्याय दिलाना।
- *अप्रत्यक्ष मूर्त लागत* है 'संभावित वित्तीय मूल्य का नुकसान'। उदाहरण के लिए दिल्ली बलात्कार की घटना के बाद भारत पर सीधा आर्थिक असर हुआ। देश के कई शहरों में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार 82 प्रतिशत सर्वेक्षित महिलाएं अंधेरा पड़ने से पहले घर पहुंचने के लिए अपने-अपने दफ़्तरों से जल्दी निकलने लगीं। इसका मतलब है कि काम के कुल घंटों में कमी आई जो अन्ततः कुल उत्पादन पर असर डालता है।
- *प्रत्यक्ष अमूर्त लागत* को ग़ैर वित्तीय प्रभाव के रूप नाम सकते हैं जैसे पीड़ित द्वारा अनुभव किया गया मानसिक संताप और शारीरिक दर्द।
- *अप्रत्यक्ष अमूर्त लागत* वह ग़ैर वित्तीय प्रभाव है जो चारों तरफ फैल कर अन्य बहुत से लोगों को प्रभावित करता है, प्रायः भावनात्मक रूप से।

बदलाव की हवा

दिल्ली के कुख्यात बलात्कार की एक अनाम पीड़िता को भारत भर के विरोध प्रदर्शनों में एक प्रेरणा का दर्जा दिया गया। विरोध प्रदर्शनों में हज़ारों ऐसी औरतें एकजुट हुई जिन्हें शिकायतें हैं और उन्होंने इंसाफ़ की आवाज़ न सिर्फ़ उस लड़की के लिए उठाई बल्कि उसके परिवार के लिए और भारत की सभी औरतों के लिए उठाई। यह बात एक प्रदर्शनकारी की टिप्पणी में झलकती है।

वो लड़की हममें से कोई भी हो सकती थी

रोचक बात यह है कि उनका साथ भारत के अनेक फ़िक्रमंद मर्द भी दे रहे हैं, जो उन्हीं की तरह बदलाव लाना चाहते हैं।

अनेक लोगों ने इस आंदोलन को बदलाव की हवा के रूप में देखा है। इसने तेज़ी से फैलते भारतीय मध्यवर्ग को एकजुट किया है ताकि वे औरतों के अधिकारों पर अपनी आवाज़ उठा सकें। परिणाम स्वरूप आज दिल्ली पुलिस के लिए महिलाओं की सुरक्षा और एक सम्पूर्णात्मक न्याय व्यवस्था सबसे बड़ा सरोकार बन गई है। अन्ततः औरतों के अधिकारों ने अपने दो सबसे कीमती घटक पा लिए हैं। एक है, महत्वपूर्ण जन सहयोग और दूसरा है, क़ानून लागू करने व्यवस्था में सकारात्मक बदलाव की संभावना। आगे बढ़ें तो अगला महत्वपूर्ण क़दम है औरतों का राजनीतिक प्रतिनिधित्व। यह ख़ासतौर पर धरातल पर जी रही औरतों की आकांक्षाओं को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण है। भारत में अनेक प्रसिद्ध महिला राजनेता हुई हैं जैसे इन्दिरा गांधी, सोनिया गांधी, मीरा कुमार जो भारतीय संसद की अध्यक्षा हैं परन्तु अधिकतर महिला राजनेता शायद ही कभी महिला अधिकारों की हिमायत करती हैं।

इसकी एक वजह यह हो सकती है कि इनमें से कई नेता उत्तराधिकार की राजनीति का नतीज़ा है और बड़े परिवारों से जुड़ी हैं। इसलिए यह बात भविष्य की राजनेताओं के लिए एक प्रेरक सीख हो सकती है कि वे धरातलीय औरतों के अधिकारों के आंदोलन से अधिक जुड़ें। साथ ही हमें भी संभल कर चलना चाहिए क्योंकि यहां बताए गए तीन घटक इस बात की गारंटी नहीं है कि परिणाम स्थाई रहेंगे।

जैसा कि पहले भी कहा गया है कि औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा तो एक लक्षण है। मूल बीमारी की जड़ें बहुत गहरी हैं— वह है हर उस चीज़ के पक्ष में चुनाव जो मर्दों को फ़ायदा पहुंचाती हो। इस तरह के सोच का तोड़ है सार्वजनिक पुनर्शिक्षण अभियान, जिनमें मुख्य बल समाज में औरतों की महत्वपूर्ण भूमिका पर होना चाहिए। इस तरह के अभियान चीन में बहुत सफल साबित हुए हैं। औरतों के ख़िलाफ़ भेदभाव समाप्त करने की उनकी सरकारी कोशिशों को भारत सरकार भी अपना सकती है। भारत में हवा का बहाव तेज़ है और शायद समानता की फसल काट पाने से पहले कड़ी मेहनत और संघर्ष का लम्बा दौर सामने है। लेकिन जैसे-जैसे और अधिक औरतें मध्यवर्ग से जुड़ रही हैं और यह आंदोलन ज़्यादा से ज़्यादा मर्दों तक पहुंच रहा है, क्षितिज पर बदलाव नज़र आने लगा है।

साभारः सेंटर फ़ॉर ग्लोबल प्रॉस्पेरिटी जनवरी 28, 2013

आमने-सामने

समय है स्त्रीद्वेषी सोच से जूझने का

कल्पना शर्मा

अब हमें दिल्ली की युवा लड़की के भयावह सामूहिक बलात्कार और मौत से उभरे दर्द और गुस्से से आगे सोचना होगा। 16 दिसम्बर से लेकर आज तक इस घटना के विभिन्न आयामों ने मीडिया में सुर्खियां बना रखी हैं। विचार, टॉक शो, सर्वेक्षण, वृत्त चित्र हमने इनके ज़रिए इस मामले के बारे में देखा, पढ़ा व सुना है। देश की राजधानी में छः पुरुषों द्वारा किए गए इस जघन्य अपराध ने एक ऐसे मुद्दे को सामने लाकर रख दिया जिसे पहले से ही एक राष्ट्रीय सरोकार समझा जाना चाहिए था।

2001 की जनगणना में बच्चों के लिंग अनुपात में गिरावट स्पष्ट नज़र आई। हमें तब ही नींद से उठकर पूछना चाहिए था कि इस देश को क्या हो रहा है जहां लड़कियों को पैदा होने का ही अधिकार नहीं है। पर हमने ऐसा नहीं किया। हमने इस प्रवण गिरावट का ज़िम्मा महिलाओं के ख़िलाफ़ बढ़ती हिंसा पर डाल दिया। एक दशक बाद ये सभी भविष्यवाणियां सच हो रही हैं।

जब अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों ने दर्शाया कि सामाजिक मान्यता प्राप्त स्वास्थ्य व कुपोषण में कमी के कारण भारत में छः साल से कम उम्र की बच्चियां मर रही हैं, तब भी सिर्फ़ कुछ लोगों को ही घबराहट हुई थी। यह कोई आकस्मिक इकलौती घटना नहीं थी। यह लड़कियों को मार डालने की एक प्रक्रिया थी। लिहाज़ा किसी ने इस पर ध्यान नहीं दिया। और न ही किसी ने इसकी कोई परवाह की।

ऐसे कई तरीके हैं जो जन्म से लेकर विवाह, यहां तक कि विधवा, परित्याक्ता या तलाक़शुदा हो जाने पर, औरतों के साथ ज़्यादतियों के लिए ज़िम्मेदार होते हैं। ये प्रक्रियाएं औरतों को दमन, हिंसा और मौत तक ले जाती हैं। इसलिए इन पर किसी का ध्यान नहीं जाता। चंद मुट्ठी भर लोग ही इसकी परवाह करते हैं।

आज औरतें इन सभी बातों पर तफ़सील से ध्यान न दिये जाने का फल भुगत रही हैं— नीति निर्माताओं, नागरिक समाज, मीडिया, बलात्कार और यौन हिंसा के मुद्दों पर आज उत्तेजित हो रहे लोग सभी इस लापरवाही के लिए ज़िम्मेदार हैं।

इस समस्या की जड़ है पितृसत्ता— एक ऐसी सच्चाई जिसका हम नाम लेने से कतराते हैं। वो सामाजिक संरचनाएं भी दोषी हैं जो पुरुष की श्रेष्ठता को वैध करार देती हैं। वो रीति-रिवाज और परम्पराएं ज़िम्मेदार हैं जो औरतों का सामाजीकरण करके उन्हें सिखाती हैं कि वे कमतर हैं और उन्हें हर कदम पर दोयम दर्जा स्वीकार करना चाहिए। और वो सोच जो पुरुषों को विश्वास दिलाती है कि आदेश देना, दमन करना, औरतों से यौन व सेवा-टहल की मांग करना उनका जायज़ अधिकार है।

जैसे-जैसे हम आपराधिक न्याय ढांचे को यौन उत्पीड़न से पीड़ित महिलाओं के लिए काम करने योग्य बनाने; मौजूदा क़ानूनों को सख़्त बनाने, जिससे अपराधी आसानी से छूट न पाए; फास्ट-ट्रैक अदालतों की स्थापना करने, जिससे मामले सालों-साल में घिसते न रहें और उत्तरजीवी दांवपेचों से थक कर हार न मान ले, की दिशा में काम कर रहे हैं वैसे-वैसे हमें यौन अपराधों को वैध ठहराने और इन्हें प्रतिपादित करने वाली सामाजिक ढांचों पर भी गहराई से सोचना होगा।

अगर उपर्युक्त सभी क़ानूनी कदम लागू कर भी दिए जाएं तब भी पितृसत्ता की पकड़ तोड़े बिना हिंसा को कम करना संभव नहीं होगा और यह कोई आसान काम नहीं है। यह ढांचा सदियों से अपने नियत ढंग से चल रहा है। समाज के बदलावों और नवीनीकरण के अनुसार यह खुद को ढालना सीख चुका है। लिहाज़ा औरतों को पढ़ने, नौकरी करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है पर एक तय सीमा रेखा के भीतर, उससे आगे नहीं। एक व्यवसाय चुनने की स्वायत्तता दी जाती है परन्तु सिर्फ़ तभी जब वह शादी की निर्धारित सीमाओं के अनुसार हो। हमें समझाया जाता है कि अपने विचार और सोच ज़रूर

रखो पर अपने जीवन में मौजूद पुरुषों यानी पिता, भाई, पति आदि को पराया करने की कीमत पर हरगिज़ नहीं। और चाहे कुछ शिक्षित युवा लड़कियां इन पाबंदियों पर नाक-भौं सिकोड़ें या झुंझलाएं पर अधिकांश इन्हीं दायरों और सीमाओं को मान लेने में ही अपनी भलाई समझती हैं।

इससे ज़्यादा हिंसा और क्या होगी कि आप किसी लड़की से कहें कि वह एक आज़ाद पंछी है, वो जो चाहे कर सकती है और फिर उसे इन मज़बूत सामाजिक ढांचों में कैद कर दें? विरोध करने और अपनी मर्ज़ी से चलने की कीमत होती है अनेक तरह की हिंसाए जिनकी शायद कभी रिपोर्ट भी दर्ज नहीं की जाती। जो सार्वजनिक जगहों पर होती है वो हिंसा शायद लोगों की नज़र में आ भी जाती हो पर घरों की चारदीवारी के भीतर क्या होता है इसका तो पता तक नहीं चलता।

इन लड़कियों की मांएं भी इस हिंसा को झेलते हुए ही जीती रही हैं। पर दोनों के बीच एक बड़ा फ़र्क़ है। उनकी मांओं ने घर के बाहर सार्वजनिक जगहों पर समान अधिकारों की मांग नहीं की थी। पर आज की लड़की का आत्मविश्वास के साथ बाहर की दुनिया में कदम बढ़ाने के मायने पुरुषों के लिए दूसरे हैं। वे समझते हैं कि ये लड़कियां उनके यौनिक इस्तेमाल के लिए मौजूद हैं। ये लड़कियां पितृसत्ता को चुनौती दे रही हैं। और इससे उन लोगों में गुस्सा बढ़ रहा है जिनका विश्वास है कि औरतें कुछ नियत कामों के लिए उपयुक्त होती हैं जैसे घर संवारने, यौन आपूर्ति और पुरुषों के लिए बेटे और वारिस जनने के लिए। इस ढांचे के बाहर जो भी निकलता है वह सज़ा का हक़दार है।

ये हालात चाहे कितने भी डरावने क्यों न हों पर अभी भी उम्मीद बाकी है- क्योंकि स्त्री और पुरुष आख़िरकार इन मुद्दों पर बात कर रहे हैं, मीडिया इनसे संबद्ध है और नीति निर्माताओं को अब कोई बहाना बनाने की इजाज़त नहीं दी जा रही है। फिर भी जब सब चीख पुकार खत्म हो जाएगी तब स्थाई बदलाव चाहने वालों को भारतीय समाज में गहरे पैठे लैगिंक भेदभाव और स्त्रीद्वेषी सोच, जिनकी अभिव्यक्ति का एक रूप सामूहिक बलात्कार और यौन हमले हैं, से लड़ना होगा।

कल्पना शर्मा, *वरिष्ठ नारीवादी पत्रकार हैं। वे महिला मुद्दों पर लिखती हैं।*
स्रोतः http://thethumbprintmag.com/ *अंग्रेज़ी से अनूदित*

कविता

दरवाज़ा

सुधा अरोड़ा

चाहे नक्काशीदार एंटीक दरवाज़ा हो
या लकड़ी चिरे हुए पट्टे से बना,
उस पर खूबसूरत हैंडल जड़ा हो,
या लोहे का कुंडा,
घर को 'घर' बनाता रहे वह दरवाज़ा
जहां मां-बाप की रज़ामंदी के बगैर
अपने प्रेमी के साथ भागी हुई बेटी से
माता पिता कह सकें-
''जानते हैं– तुमने गलत फ़ैसला लिया
फिर भी हमारी यही दुआ है,
खुश रहो उसके साथ
जिसे तुमने चना है!
कभी यह फ़ैसला भारी पड़े
और पांव लौटने को मुड़ें
तो यह मत भूलना,
यह दरवाज़ा खुला है तुम्हारे लिए!''
बेटियों को जब सारी दिशाएं
बंद नज़र आएं
कम से कम एक रोशनदान
हमेशा खुला रहे उनके लिए!

सुधा अरोड़ा, *हिन्दी साहित्य जगत की लेखिका हैं।*

अभियान

उठो, नाचो, विरोध करो:
उमड़ते सौ करोड़ अभियान के अनेक रुख

पामेला फिलिपोज़

29 मार्च 1978 की रात। हैदराबाद में एक युवा महिला रमीज़ा बी. का तीन पुलिसकर्मियों ने सामूहिक बलात्कार किया। उसे बचाने की कोशिश करने पर उसके पति की हत्या कर दी गई। गुस्से में भड़के लोगों ने अगले दिन शहर में बंद घोषित कर दिया।

औरतों पर होने वाली हिंसा के उत्तरजीवियों की फेहरिस्त जुड़ने वाला एक और नाम है रमीज़ा बी। उसके साथ होने वाला घटना उन तमाम अनगिनत हिंसाओं का हिस्सा है जो अनचीन्ही रह जाती हैं, जिनका कोई हिसाब नहीं होता और जिनकी कोई सज़ा मुकर्रर नहीं की जाती— और जिनके ख़िलाफ़ पूरे देश की औरतें संघर्ष कर रही हैं।

आइए अब आगे बढ़ें— दिसम्बर 16, 2012— एक युवा लड़की, दिल्ली के एक सिनेमाघर से रात आठ बजे अपने पुरुष मित्र के साथ घर लौटने के लिए बस लेती है। उसके साथ सामूहिक बलात्कार किया जाता है। उसके साथी व उसको लोहे के सरिये से घायल करके अधमरी हालत में सड़क पर फैंक दिया जाता है।

क्या इन पैंतीस वर्षों में वाकई कुछ भी बदला है? औरतों के साथ हिंसा महिला आंदोलन और सक्रियता का एक प्रमुख मुद्दा रहा है और हैदराबाद घटना के पच्चीस सालों बाद आज भी हम उसी कगार पर खड़े हैं। विगत वर्षों में चाहे ऐसे अपराधों के ख़िलाफ़ आवाज़ों ने ज़ोर पकड़ा हो और प्रगतिशील क़ानून भी बनाए गए हों पर यह भी सच है कि औरतों के ख़िलाफ़ हिंसा के नए और वहशी रूप देश के असंख्यक कोनों से हमारे सामने आए हैं। *राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड शाखा* के आंकड़ों को देखें तो 1953-2011 के बीच भारत में बलात्कार की घटनाओं में 873 प्रतिशत बढ़त देखी गई है। देश की कड़वी सच्चाई बस इन्हीं आंकड़ों में स्पष्ट नज़र आती है।

पिछले कुछ महीनों में *उमड़ते सौ करोड़ अभियान* ने औरतों पर होने वाली हिंसा के मुद्दे को समस्त भारत— मदुरई से दिल्ली व मुंबई से भुवनेश्वर तक के इलाकों में एक बार फिर, एक नए तरीके जिसमें नए युवा कार्यकर्ताओं की रचनात्मकता व ऊर्जा और पुरानी नारीवादियों की दृढ़ प्रतिबद्धता का समावेश दिखाई पड़ता है, का आह्वान किया है।

इस अभियान की शुरूआत अमरीकी लेखिका व कार्यकर्ता, ईव एंसलर के विश्व स्तरीय उदघोष के साथ हुई जिसमें दुनिया के सभी स्त्री, पुरुष व बच्चों से 14 फरवरी 2013 को महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा को जड़ से मिटाने के लिए साथ जुड़ने का ऐलान था। 161 देशों के लगभग पांच हज़ार समूहों ने इस विचार का समर्थन किया फिर चाहे वे फिलिपींस में खनन विरोध से जुड़े हों या बंगलादेश में तेज़ाबी हमलों की मुखालफ़त कर रहे हों अथवा यूके में नए क़ानूनों के लिए संघर्षरत हों।

उमड़ते सौ करोड़ अभियान की दक्षिण एशिया समन्वयक *संगत* संस्था की कमला भसीन का मानना है कि वैश्विक

अभियान बेहद महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि वे राष्ट्रीय अभियानों में ऊर्जा संचारित करते हैं। "मुझे लगता है कि अकेले मैं एक बूंद मात्र हूं। पर जब मैं किसी वैश्विक अभियान से जुड़ जाती हूं। तो एक महासागर का रूप ले लेती हूं। आओ हम सब मिलकर इस विचार को फैलाएं। अपने सभी रचनात्मक और सांस्कृतिक संसाधनों को एकजुट करके हिंसा का सामूहिक विरोध करें।"

दिलचस्प बात यह है कि विदेशी अभियानों से परहेज रखने वाले समूह भी इस विचार से सहमत हैं। *एनएफआईडब्लयू* की कार्यकारी अध्यक्षा गार्गी चक्रवर्ती कहती हैं "अब समय आ गया है कि सभी महिलाएं अपने अलगावों को छोड़कर कुछ चुनिंदा महत्वपूर्ण मुद्दों को मिलकर अपनाएं। *उमड़ते सौ करोड़ अभियान* एक ऐसी ही प्रक्रिया है फिर चाहे आप इसे संघर्ष कहें या जश्न का नाम दें।"

इस बात पर आम स्वीकृति है कि महिलाओं पर हिंसा और हमले फिर चाहे वे घर के भीतर हों या सार्वजनिक जगह पर हमारी मौजूदा सामाजिक संरचनाओं में सन्निहित हैं।

जहां गार्गी चक्रवर्ती का विचार है कि ग़रीबी अपने आप में ही एक संरचनात्मक हिंसा का रूप है वहीं *अखिल भारतीय दलित महिला मंच* की संयोजिका विमल थोरट का विश्वास है कि *उमड़ते सौ करोड़* जैसे अभियानों में जाति व्यवस्था द्वारा प्रतिपादित हिंसा को भी स्वीकार किया जाना चाहिए। वे उल्लेखित करती हैं, "हरियाणा के मिर्चपुर मामले को ही ले लें जहां 2010 में एक 70 वर्षीय दलित पुरुष और उसकी विकलांग बेटी को ज़िंदा जला दिया गया था। यह सब तब शुरू हुआ जब दलित परिवार के पालतू कुत्ते को सवर्णों ने मार डाला। दलित परिवार के विरोध जताने पर स्थानीय जाट समुदाय ने पूरी दलित बस्ती को आग लगा दी। भारत में हम आज भी इसी तरह की हिंसाओं का सामना करते हैं जिनमें औरतें सबसे कमज़ोर लक्ष्य मानी जाती हैं।"

औरतों को कमज़ोर लक्ष्य समझे जाने का एक दहला देने वाला वाकया जुलाई 9, 2012 की घटना में देखने को मिला जब पब से बाहर निकल रही युवती को गुवाहाटी की सड़क पर लड़कों के एक गुट ने हमला बोल दिया। इस घटना को याद करते हुए *नार्थ-ईस्ट नेटवर्क* की अध्यक्षा मोनिषा बहल कहती हैं, "पूर्वोत्तर राज्यों में बसने वाली हम महिलाओं के लिए, जो कई दशकों से हिंसा पर काम कर रही हैं यह घटना बेहद तकलीफ़ देने वाली थी क्योंकि इस वारदात ने यह दर्शाया कि असम की महिलाओं के लिए सार्वजनिक जीवन में कोई जगह नहीं है। इसलिए हमें एक साथ आकर कहना होगा बस, अब और नहीं।"

'बहुत हुआ' जहांगीरपुरी दिल्ली की पुनर्वास बस्ती में रहने वाली बवरी देवी जो *एक्शन इण्डिया* की कार्यकर्ता है का भी कहना है। "मैं राजस्थान से आई पलायित महिला हूं। हम दिल्ली आकर इस पुनर्वास बस्ती में बस गए। इस शहर की हर गली में हिंसा की एक न एक दास्तान दर्ज है। आज हिंसा काफी विभिन्न रूप ले रही है और इसलिए हमें विविध तरीकों से इसका खात्मा करना होगा।"

भारत सरकार के *महिलाओं के राष्ट्रीय मिशन* की प्रमुख निदेशक रश्मि सिंह *उमड़ते सौ करोड़ अभियान* द्वारा चलाए एकजुटता प्रयासों को सराहते हुए कहती हैं, "यह विभिन्न पणधारियों को एक साथ लाने का प्रयास है और मुझे लगता है कि इस तस्वीर में सरकार को भी शामिल किया जाना चाहिए। सरकार को भी इस बात का एहसास होना ज़रूरी है कि महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा प्रशासन का एक बेहद महत्वपूर्ण विषय है।"

उमड़ते सौ करोड़ अभियान की ख़ासियत यही है कि उसमें एक ऊर्जा का प्रवाह देखा जा सकता है जो उन युवाओं की उन्मुक्त देन है जो इससे जुड़े हैं। इन युवाओं ने नारे रचे हैं, ढोल पीटे हैं, लघु वृत्त चित्र व नृत्य बनाए हैं और इंटरनेट का रचनात्मक व प्रभावशाली तरीकों से इस्तेमाल किया है।

इस अभियान के दिल्ली लाँच के दौरान नवम्बर की एक सर्द शाम को गायिका-कार्यकर्ता विद्याशाह के गीत पर पूरा रंगभवन हाथ उठाकर झूमता-नाचता दिखाई दिया। उसी क्षण हिंसा के ख़िलाफ़ संघर्ष ने उसे जड़ से मिटाने की अभिलाषा का जश्न मनाने का रूप ले लिया था।

यूएन विमेन की क्षेत्रीय प्रोग्राम निदेशक ऐनी स्टेनहैमर का विश्वास है कि इस तरह के मज़बूत अभियानों में इस प्रकार के उमंग का होना बहुत ज़रूरी है। "मैं जंग के दौरान कोसोवो में थी। वहां मैंने एक अहम बात सीखीः चूंकि जंग से उजड़े इलाकों की बहाली अपने आप में ही लम्बी व थकाने प्रक्रिया वाली होती है लिहाज़ा इस पुनर्निमाण से जुड़े लोगों में जीने का उत्साह व नई स्फूर्ति होना आवश्यक है।"

'उठो, नाचो, विरोध करो' के अपने नारे के साथ जिसमें शरीर खुद विरोध का एक प्रतीक बन जाता है, यह अभियान औरतों के लिए एक हिंसा मुक्त भविष्य की रचना के साथ-साथ साझे पुल बनाने के प्रति भी बचनबद्ध है।

पामेला फिलिपोज़, *विमेंस फ़ीचर सर्विस, दिल्ली की निदेशक व वरिष्ठ पत्रकार हैं।*

साभारः मेनस्ट्रीम वाल्यूम-1 दिसम्बर 22, 2012

अभियान

महिला संगठनों द्वारा यौन हिंसा व मृत्युदंड विरोधी वक्तव्य

हम सभी छात्र, महिला संगठनों व प्रगतिशील समूहों के सदस्य तथा समस्त देश के ज़िम्मेदार नागरिक बेहद कड़े शब्दों में दिल्ली में 16 दिसम्बर 2012 को 23 साल की लड़की के सामूहिक बलात्कार व मौत तथा उसके दोस्त के साथ हुई हिंसा की निंदा करते हैं। हम यह दृढ़तापूर्वक कहना चाहते हैं कि बलात्कार व यौन हिंसा के अन्य रूप केवल महिलाओं का मुद्दा नहीं है, यह एक राजनैतिक मुद्दा है जिससे हर नागरिक का सरोकार होना चाहिए। हमारी पुरज़ोर मांग है कि इस मामले तथा अन्य सभी केसों में इंसाफ़ किया जाए और अपराधियों को सज़ा मिले।

यह घटना अपने आप में अकेली नहीं है। इस देश में यौन हमले भयावह नियमितता से घटित होते हैं। आदिवासी व दलित महिला, असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली विकलांग महिलाएं, हिजड़े, कोथी, ट्रांसजेंडर तथा यौन कर्मी वर्गों के ऊपर होने वाले यौन हमलों में अपराधी को विशेषतः दण्डाभाव रहता है— यह जग–ज़ाहिर है कि इनके द्वारा दर्ज यौन हिंसा की शिकायत नज़रअंदाज़ कर दी जाती हैं। हम चाहते हैं कि न्यायिक चक्र दिल्ली बस केस वाली वारदात के अलावा हम सबको ग्रसित करने वाली यौन हिंसा की महामारी पर भी तवज्जो दे। हमें ऐसी सज़ा का प्रावधान करने की ज़रूरत है जो इन जघन्य अपराधों को अंजाम देने वाले पुरुषों को डराकर रोक सके। हमारा उद्देश्य दण्ड विरोधी नहीं हैं बल्कि हम राज्य द्वारा मृत्युदण्ड दिए जाने के ख़िलाफ़ हैं। बलात्कार के मामलों में 26 प्रतिशत दोष सिद्धि दर की हकीकत इस बात का पुख्ता सबूत है कि देश में यौन हिंसा अपराधियों के लिए बड़ी संख्या में दण्डाभाव है जिसमें आरोपों से बरी होना भी शामिल है।

रोज़मर्रा के यौन हमलों के अन्य रूपों जैसे घूरना, ज़बरदस्ती छूना, छींटाकशी, पीछा करना, सीटी बजाना आदि के मूक गवाह भी हमारी संस्कृति में बलात्कार के प्रचलन में समान रूप से ज़िम्मेदार हैं। लिहाज़ा हम यौन हमलों को बर्दाश्त करने, इस पर ख़ामोश रहने तथा इस प्रकार की हिंसा को गौरवान्वित करने वाली संस्कृति की भी निंदा करते हैं।

हम उन सभी स्वरों का भी प्रतिरोध करते हैं जो महिलाओं व लड़कियों के लिए समाज में समान भागीदारी और घरों के अन्दर व बाहर यौन हमलों के ख़तरों से मुक्त जीवन जीने के अधिकार की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के बजाए उन्हें 'सुरक्षा' के नाम पर कैद और नियंत्रित करने के लिए तैयार हैं।

इस तरह के मामले में, जिसने पूरे देश में एक सार्वजनिक विरोध को हवा दी है और जिसमें सभी अपराधी हिरासत में ले लिए गए हैं हम उम्मीद करते है कि इंसाफ़ की बहाली होगी और आरोपियों को इस नृशंस अपराध के लिए कड़ी सज़ा मिलेगी। फिर भी हमारे लिए 'न्याय' की मांग में मृत्युदण्ड शामिल नहीं है जो कि यौन हिंसा के इन मामलों में न तो ठोस निवारक है और न ही समस्या का कोई प्रभावशाली व नैतिक हल। हम निम्न कारणों से मृत्युदण्ड के प्रावधान की मुखालफ़त कर रहे हैं:–

1. हम मानते हैं कि हर इंसान को जीने का अधिकार है। हमारा आक्रोश हिंसा के किसी भी नए चक्र को जन्म नहीं दे सकता। हम हर उस हिंसा को 'जायज़' करार देने से इंकार करते हैं जो राज्य को हमारे नाम पर किसी की भी जान लेने का अधिकार प्रदान करे। बलात्कारियों के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान करके राज्य द्वारा महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा से जुड़े जटिल सामाजिक–राजनैतिक सवालों की उपेक्षा की जा सकती है। मृत्युदण्ड का इस्तेमाल अक्सर वास्तविक मुद्दे से ध्यान हटाने के लिए किया जाता है— इससे कुछ बदलता नहीं है बल्कि यह राज्य द्वारा नागरिकों को नियंत्रित करने के हथियार के रूप में काम करता है।

2. हमारे पास कोई उदाहरण नहीं है जो साबित करें कि मृत्युदण्ड बलात्कार के अपराध को रोकने में मददगार निवारक हो सकता है। मौजूदा आंकड़े दर्शाते हैं कि बलात्कार के मामलों में दोषसिद्धि की दर काफी कम है और इस बात की बड़ी संभावना है कि मृत्युदण्ड का प्रावधान इस दर को और अधिक गिरा देगा क्योंकि यह सज़ा 'रेयरैस्ट ऑफ़ रेयर' परिस्थितियों में ही दी जाती है। सज़ा की कठोरता से अधिक सज़ा को सुनिश्चित करना अपराध निवारण में सबसे महत्वपूर्ण कारक हो सकता है।
3. संयुक्त राष्ट्र जैसे देशों में यह देखा गया है कि मृत्युदण्ड की सज़ा पाने वालों में अल्पसंख्यक समुदायों के पुरुषों की संख्या विषम रूप से बड़ी होती है। भारत के संदर्भ में मृत्युदंड की सज़ा वाले अपराधों की समीक्षा में यह देखा जा सकता है कि किस प्रकार से इन क़ानूनों को मनमाने और पक्षपातपूर्ण तरीकों से विशेषतः सुविधाहीन समुदायों व धार्मिक व जातीय अल्पसंख्यकों पर लागू किया जाता है। यह एक प्रमुख और वास्तविक चिंता का विषय है क्योंकि एक ही अपराध के लिए अलग–अलग सज़ा की संभावना भी अपने आप में घोर अन्याय है।
4. बलात्कारियों के लिए मौत की सज़ा की दलील इस सोच पर आधारित है कि बलात्कार मौत से भी बद्तर होता है। 'इज़्ज़त' से जुड़े पितृसत्तात्मक मानक हमें यह विश्वास दिलाते हैं कि बलात्कार औरत के साथ घटने वाली सबसे डरावनी घटना है। जिसके साथ बलात्कार हुआ है वह एक 'विध्वस्थ', 'लुटी' हुई औरत है जो अपना 'सम्मान' खो चुकी है और जिसके लिए समाज में कोई जगह नहीं है। इस रूढ़िवादी छवि को दृढ़ चुनौती देना बेहद ज़रूरी है। हम मानते हैं कि बलात्कार पितृसत्ता का एक हथियार है, हिंसा का एक रूप है जिसका नैतिकता, चरित्र और बर्ताव से कोई लेना–देना नहीं है।
5. बड़ी संख्या में औरतें अपने जानकार, नज़दीकी दोस्तों, साथियों या परिवार के सदस्यों के हाथों यौन हिंसा झेलती हैं। अपने खुद के रिश्तेदारों के ख़िलाफ़ रिपोर्ट करने की सामाजिक व मनोवैज्ञानिक यातना का सामना कौन कर सकता है? क्या विवाह के अन्दर पति द्वारा किए गए बलात्कार (जो अभी तक क़ानूनी तौर पर मान्य नहीं है) को कभी भी सैद्धान्तिक रूप से उसी दण्डात्मक नज़रिए से आंका जा सकेगा?
6. राज्य अक्सर अपने लिए 'हत्या का अधिकार' आरक्षित रखता है – सशस्त्र सेना, पैरामिलिट्री तथा पुलिस के माध्यम से। हम मणिपुर में 2004 में असम राइफ़ल्स द्वारा थंगजम मनोरमा की बलात्कार, यातना व हत्या या 2009 में शोपियन (कश्मीर) में नीलोफर व आसिया के अपहरण, सामूहिक बलात्कार व हत्या की घटनाओं को कैसे भूल सकते हैं? राज्य को अत्याधिक सत्ता देना फिर चाहे वह पुलिस के पास देखते ही गोली मार देने की सत्ता हो या न्यायालय को मौत की सज़ा सुनाने की आज़ादी हो, अपराध कम करने के लिए कारगर हल नहीं हो सकता।

   इसके अलावा, मृत्यदण्ड के प्रावधान के चलते, 'क़ानून के संरक्षक' यह निश्चित करेंगे कि उनके ख़िलाफ़ कोई भी शिकायत दर्ज न हो या फिर वह पूरी कोशिश करेंगे कि मामले में इंसाफ़ न हो सके। सोनी सोरी का मामला (जिसे पिछले वर्ष पुलिस हिरासत में प्रताड़ित किया गया था) तमाम प्रचार के बावजूद आज भी जस का तस है और वह छत्तीसगढ़ जेल से अपना संघर्ष जारी रखे है।
7. जैसा कि हम जानते हैं ऐसे मामले में जहां अपराधी आधिकारिक दर्जे का है (जैसे हिरासत में बलात्कार, जाति व धार्मिक हिंसा के मामलों में) दोषसिद्धि मुश्किल होती है। इन्हीं सब कारणों की वजह से मौत की सज़ा के प्रावधान में अपराध को साबित करना लगभग असंभव ही होगा।

   हम नीचे हस्ताक्षर करने वाले सभी लोग निम्न मांगें करते हैं –

   - औरतों व लड़कियों के लिए अधिक गरिमा, समानता, आज़ादी व अधिकारों की मांग, एक ऐसे समाज से जो हर कदम पर उनकी कार्रवाइयों पर सवाल उठाने व नियंत्रण करने के प्रयास न करे।
   - यौन हमलों/हिंसा की संघर्षशील महिला के लिए तत्कालिक क़ानूनी, चिकित्सीय, आर्थिक व मनोवैज्ञानिक सहयोग तथा दीर्घकालीन पुनर्वास उपाय।

- औरतों के लिए शहरों को सुरक्षित बनाने के लिए बेहतर आधारभूत सुविधाओं का प्रावधान जिसमें अच्छी रोशनी वाले बस स्टॉप, पारपथ, हैल्प लाईन व आपातकालीन सेवाएं शामिल हों।
- यातायात सेवाओं (सार्वजनिक, निजी, ठेके पर सेवाएं) को सुरक्षित करने तथा सभी तक उनकी पहुंच बढ़ाने के लिए उनका प्रभावशाली पंजीकरण, नियंत्रण व निगरानी।
- राज्य तथा उसके विभिन्न संस्थानों, जिसमें पुलिस भी शामिल है, द्वारा नियोजित व नियुक्त सभी कर्मचारियों के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में जेंडर संवेदनशील कोर्स को अनिवार्य बनाना।
- पुलिस पर सार्वजनिक जगहों को उत्पीड़न, छेड़छाड़ व यौन हमलों/हिंसा से सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी सुनिश्चित की जाए। इसका अर्थ यह होगा कि उन्हें खुद शिकायत लेकर आने वाली महिलाओं पर यौन हमले/उत्पीड़न करना बंद करना होगा। उन्हें सभी एफ.आई.आर. दर्ज करके शिकायतों पर कार्रवाई करनी होगी। सभी पुलिस थानों में सी.सी.टी.वी. कैमरे लगाए जाएं तथा मुलज़िम पुलिस कर्मचारियों के ख़िलाफ़ तुरंत कार्रवाई की जाए।
- समस्त देश में बलात्कार तथा यौन हिंसा के मामलों के निपटारे के लिए 'फ़ास्ट ट्रैक' अदालतें फौरन स्थापित की जाएं। राज्य सरकार को चाहिए कि वह इन अदालतों में कार्रवाई शुरू करने को अपनी प्राथमिकता बनाए। छह महीने के अंदर मामले का फ़ैसला किया जाना चाहिए।
- राष्ट्रीय महिला आयोग ने बार–बार यह साबित किया है कि यह संस्थान महिलाओं के हितों के विरुद्ध काम करता रहा है। महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा के मुद्दों को सम्बोधित करने के आदेश को पूरा करने में आयोग की असमर्थता, आयोग की अध्यक्षा द्वारा दिए गए वक्तव्यों के समस्यापूर्ण स्वभाव तथा आयोग की निरी निष्क्रियता को देखते हुए यह आवश्यक है कि इसका पुनरीक्षण व समीक्षा जल्द से जल्द की जाए।
- राज्य देश के विभिन्न हिस्सों ख़ासकर कश्मीर, पूर्वोत्तर व छत्तीसगढ़ में हिरासत में औरतों के ख़िलाफ़ होने वाली हिंसा की सच्चाई को स्वीकार करे। सरकार द्वारा सभी विचाराधीन मामलों में तात्कालिक कार्रवाई हो तथा मुजरिमों को सज़ा दी जाए। साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाए कि हिंसा की ये वारदातें दोबारा दोहराई न जा सकें।
- जहां तक आपराधिक क़ानून (संशोधन) बिल 2012 का सवाल है महिला समूहों ने अपने ब्यौरेवार सुझाव गृह मंत्रालय को प्रस्तुत कर दिए हैं। हम इस बात को दृढ़ता से रेखांकित करते हैं कि इस क़ानून को इसके मौजूदा स्वरूप में पारित नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें अनेक गंभीर खामियां व त्रुटियां हैं। कुछ प्रमुख बिन्दु निम्न हैं:–
- भारतीय दंड संहिता की धारा 375 में सहमति की दोषपूर्ण परिभाषा में कोई संशोधन नहीं किया गया है जो महिलाओं के हितों की विरोधी है।
- यौन हमले/हिंसा के अपराध को लिंग निरपेक्ष बनाना, अपराधी की पहचान को भी लिंग निरपेक्ष बना देता है। हमारी मांग है कि अपराधी की परिभाषा लिंग विशिष्ट तथा पुरुषों तक सीमित होनी चाहिए। यौन हिंसा ट्रांसजेंडर व्यक्तियों को भी अपना निशाना बनाती है और क़ानूनी सुधार में इस बात को सम्बोधित किया जाना चाहिए।
- अपने मौजूदा स्वरूप में यह विधेयक यौन हमले/हिंसा के क्रमबद्ध व संरचनात्मक स्वभाव, जो आघात, चोट, क्षति, अपमान व मानहानि के सिद्धांत पर आधारित है को मान्यता नहीं देता। विधेयक में यौन हमले, संगीन यौन हमले तथा यौन अपराध की और निर्धारित श्रेणियों को भी इस्तेमाल नहीं किया गया है।
- यह सुरक्षाकर्मियों द्वारा यौन हिंसा/हमले को संगीन यौन अपराध की विशिष्ट श्रेणी में शामिल नहीं करता। हमारी प्रखर मांग है कि सुरक्षाकर्मियों द्वारा यौन अपराधों को धारा 376 (2) में जोड़ा जाए।

तारीख: 23/12/2012

संयुक्त राष्ट्र की विशेष प्रतिवेदक

अभियान

रशीदा मांजू का महिला हिंसा पर वक्तव्य

संयुक्त राष्ट्र की विशेष प्रतिवेदक, रशीदा मांजू ने अपने वक्तव्य में भारत से दंडमुक्ति, असमानता और भेदभाव की संस्कृति खत्म करने की मांग रखी ताकि महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा को जड़ से मिटाया जा सके। महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा, के कारण व प्रभावों के बारे में बात करते हुए रशीदा मांजू ने कहा कि महिलाओं पर हिंसा असमानता और भेदभाव का वास्तविक कारण और नतीजा दोनों है।

मानवाधिकार परिषद के जनादेश के तहत उन्होंने भारत सरकार से गुज़ारिश की कि महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा को "समाजों में व्याप्त दमन और भेदभाव की अन्य प्रणालियों" से जोड़कर देखा जाए। केवल क़ानून और नीतियां बना देने से ही आवश्यक बदलाव नहीं लाए जा सकते, जब तक कि महिला सशक्तिकरण और सामाजिक परिवर्तन के लक्ष्यों को भेदभाव, हिंसा और दंडमुक्ति की व्यापक संस्कृति को सम्बोधित करने वाले उपायों के साथ जोड़कर न देखा जाये।" अपनी भारत यात्रा के दौरान मांजू ने नई दिल्ली, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र तथा मणिपुर में सभाएं कीं और तमिलनाडु सहित अन्य राज्यों से भी जानकारियां इकट्ठा कीं। वे नागरिक और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं, राज्य तथा केंद्रीय प्राधिकरणों के प्रतिनिधियों, मानवाधिकार संस्थानों व एवं संयुक्त राष्ट्र एजेंसियों के सदस्यों से मिलीं और मानवाधिकार हनन के अनुभवों पर जानकारी इकट्ठी की। मांजू ने प्राप्त जानकारियों के आधार पर महिलाओं के साथ होने वाली विभिन्न प्रकार की हिंसाओं में यौन हिंसा, घरेलू हिंसा, जातीय भेदभाव और हिंसा, दहेज हत्या, सम्मान जनित अपराध, डायन–हत्या, सती, यौन उत्पीड़न, समलैंगिकों, द्विलिंगियों तथा विपरीत लिंगी व्यक्तियों के ख़िलाफ़ हिंसा, जबरन और बाल विवाह, पानी और मूलभूत सुविधाओं का अभाव, विकलांग महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, प्रजनन व यौन अधिकारों के उल्लंघन, लिंग परीक्षण, हिरासत व संघर्ष क्षेत्र में हिंसा का उल्लेख किया। इस वक्तव्य में विकलांग महिलाओं द्वारा अनुभव हिंसा के रूपों को स्वीकारा गया जिसमें यौनिक हिंसा, जबरन नसबंदी, गर्भपात तथा बिना सहमति के चिकित्सा/इलाज शामिल हैं। इसके अलावा, भेदभाव, बहिष्करण और हाशियाबद्ध किए जाने से जुड़े उनके अनुभव इस ओर विशेष ध्यान दिए जाने की ज़रूरत पर ज़ोर देते हैं।

"मांजू ने आगे यह भी बताया कि हिंसा महिलाओं और लड़कियों के ख़िलाफ़ "कोख से कब्र तक का विषम चक्र" है जो महिलाओं की सामाजिक और आर्थिक स्थिति व पुरुष प्रधानता व स्त्री आधीनता के पितृसत्तात्मक व सांस्कृतिक मानदण्डों से जुड़ी है। परिवार की एकता को कायम रखने की राज्य पक्षों की कोशिशें कल्याण/सामाजिक सोच पर आधारित होती हैं, मानव अधिकारों के नज़रिये पर नहीं। लिहाज़ा इनमें सत्ता और सत्ताहीनता पर आधारित संबंधों के स्वभाव, आर्थिक और भावनात्मक निर्भरता, आक्रामक व्यवहार, संस्कृति, परंपरा और धर्म के प्रयोग पर ध्यान नहीं दिया जाता।" नये बलात्कार संशोधन क़ानून में वर्मा समिति की सिफ़ारिशों को पूरी तरह शामिल न करने को दुर्भाग्यपूर्ण मानते हुए उन्होंने कहा कि "एक ऐसे मौके को खो दिया गया है जो महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाली असमानता और भेदभाव को दूर कर सकता था।" ऐसा करने से महिलाओं की यौनिक व शारीरिक अखंडता के अधिकार से जुड़े बदलाव के मानक और स्तर को बेहतर बनाने के लिए एक समग्र और प्रतिकारी ढांचे के विकास का रास्ता बंद कर दिया है। मौजूदा पद्धति महिलाओं के ख़िलाफ़ हिंसा के बुनियादी और संरचनात्मक कारणों और परिणामों को सम्बोधित करने में नाकामयाब रही हैं।"

हालांकि घरेलू हिंसा से महिलाओं की सुरक्षा एक सकारात्मक कदम है परन्तु इस क़ानून के प्रावधानों व कार्यान्वयम के बीच अंतर एक बहुत बड़ी कमज़ोरी है। "पीड़ितों को क़ानूनी, सामाजिक और वित्तीय सहायता मुहैय्या कराने वाले प्रावधानों के बावजूद, कई महिलाएं अपनी शिकायत दर्ज कराने में असफल रहती हैं। यही नहीं, हिंसा की रोकथाम, जो राज्य का मूल दायित्व है, इस क़ानून के क्रियान्वयन में दिखलाई नहीं पड़ता।" उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि हाल ही में हुए संशोधनों के बावजूद, "दुर्भाग्यपूर्ण सच्चाई यही है कि भारत में दण्डमुक्ति के मानक के चलते अभी भी बहुत सी महिलाओं के अधिकारों का उल्लंघन किया जा रहा है। महिलाएं केवल युद्ध, युद्ध के बाद और विस्थापन जैसे हालातों में ही नहीं, बल्कि शांतिपूर्ण हालातों में भी हिंसा का सामना करती हैं।" रशीदा मांजू ने आगे कहा कि उनके पास आने वाली गवाहियों में आमतौर पर संवैधानिक अधिकारों की सामान्य तौर पर गैर मौजूदगी, तथा समानता, गरिमा, शारीरिक अखण्डता, जीवन व न्याय तक पहुंच के अधिकारों का हनन एक प्रमुख विषय है।

इस बयान में यह भी कहा गया कि संघर्ष आधारित यौन हिंसा के संदर्भ में, राज्य और गैर–राज्ययी पक्षों द्वारा हनन को स्वीकारा जाना महत्वपूर्ण है। उन्होंने *सशस्त्र बल (विशेषाधिकार) अधिनियम* तथा *सशस्त्र बल (जम्मू–कश्मीर) विशेषाधिकार*

अधिनियम का हवाला देते हुए बताया कि ये अधिनियम, मानवाधिकार उल्लंघन के लिए दंडमुक्ति के रूप में सामने आए हैं। "प्राप्त बयानों से यह स्पष्ट था कि इस अधिनियम की व्याख्या और क्रियान्वयन, मौलिक अधिकारों और स्वतंत्रता को जड़ से खत्म करता है– जिसमें जम्मू–कश्मीर व पूर्वोत्तर राज्यों में महिलाओं की घूमने–फिरने की आज़ादी, संघ और शांतिपूर्ण सभा, सुरक्षा व संरक्षण, सम्मान तथा शारीरिक अखंडता के अधिकार शामिल हैं।" उन्होंने कहा कि शांतिपूर्ण और वैध प्रदर्शनों को अक्सर सैन्य कार्रवाइयों द्वारा दबा दिया जाना बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है। इस वक्तव्य में दलित, आदिवासी, अन्य अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा स्वदेशी अल्पसंख्यक वर्गों की महिलाओं के उत्पीड़न को भी स्वीकारा गया है। "उनकी वास्तविकता यह है कि वे राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था के आख़िरी पायदान पर खड़ी हैं और बदतर किस्म के भेदभाव और दमन का सामना करती हैं, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी उनकी सामाजिक–आर्थिक अरक्षिता को पुनस्थार्पित करता है।" मांजू ने मणिपुर में अचानक लापता होने वाली युवा महिलाओं की आक्रोशपूर्ण कहानियां सुनीं। उन्हें बताया गया कि पुलिस का रवैया इस बारे में लापरवाह रहा है और वे महिलाओं के लापता होने को प्रेमी के साथ भाग जाने का नाम देते हैं। मांजू ने इन गुमशुदगियों का यौन उत्पीड़न, शोषण और अवैध मानव तस्करी से जुड़ाव होने की संभावना पर चिंता व्यक्त की।

"आमतौर पर क्षेत्र में आदिवासी और देशज महिलाएं दिन–ब–दिन उत्पीड़न, दुर्व्यवहार, शारीरिक और यौनिक हिंसा सहती हैं। उन्हें अनेक पाबंदियों के चलते अच्छी स्वास्थ्य सेवा और अन्य आवश्यक संसाधन भी मुहैय्या नहीं होते।" बयानों में बाल विवाह, तथा दहेज–संबंधी रीतियों, तंत्र–मंत्र, सम्मान–हत्या, डायन–हत्या तथा सांस्कृतिक और धार्मिक अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ होने वाली सांप्रदायिक हिंसा को भी उजागर किया गया। सांप्रदायिक हिंसा के मुद्दे पर वक्तव्य में उन महिलाओं को याद किया गया, "जिनके साथ 2002 के गुजरात नरसंहार में उनकी धार्मिक पहचान के कारण मारपीट व बलात्कार, निर्वस्त्र करके जलाना और मार डालना जैसी हिंसाए हुई हैं।" मांजू ने भारत में गिरते हुए लिंग अनुपात पर भी चिंता व्यक्त की। सरकारी हस्तक्षेपों को लागू करने से निगरानी पद्धति के माध्यम से गर्भधारण की चौकसी की जा रही है जिसके कारण महिलाओं को गर्भपात के वैद्य अधिकार से वंचित किया जा रहा है और जो उनके यौनिक व प्रजनन अधिकारों का उल्लंघन है।

विशिष्ट प्रतिवेदक ने अपने वक्तव्य में सार्वजनिक स्थलों, परिवारों अथवा काम की जगहों पर कार्यस्थल हिंसा, यौन हिंसा और उत्पीड़न के व्यापक प्रसार को भी रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि सार्वजनिक स्थलों/सुविधाओं/परिवहन सेवाओं में आमतौर पर असुरक्षा की भावना पाई जाती है और इनमें महिलाएं व बच्चे अक्सर यौन उत्पीड़न तथा हमले का शिकार होते हैं।" वक्तव्य में महिला घरेलू कामगरों के यौन उत्पीड़न व अन्य अन्यायों के बारे में हताशा व्यक्त की गई। "उनमें से कई महिलाएं, प्रवासी और अपंजीकृत होती हैं, जो नौकर या बंधुआ मज़दूर के रूप में, अक्सर कम वेतन, कम मूल्य और लापरवाह नियंत्रण वाले तकलीफदेय माहौल में काम करती हैं।"

इस वक्तव्य में कई सुझाव दिए गए जिनमें मानवाधिकार संगठनों द्वारा दिया गये सुझाव भी शामिल थे।

- समग्र जेंडर समानता हासिल करने में व्यक्तिगत क़ानूनों के नकारात्मक प्रभावों को देखते हुए सुझाव दिया गया कि ऐसे क़ानूनों में सुधार लाया जाना चाहिए ताकि क़ानूनी समानता को सुनिश्चित किया जा सके (सीडॉ)।
- सरकार से मांग की गयी है कि घरेलू हिंसा के सभी पीड़ितों को घरेलू हिंसा क़ानून का लाभ प्राप्त होना चाहिए। *घरेलू हिंसा से महिला सुरक्षा अधिनियम* तथा *भारतीय दंड संहिता* की धारा 498 ए, को प्रभावशाली ढंग से लागू किया जाना चाहिए। (सी.ई.एस. सी.आर.)।
- *सशस्त्र बल (विशेषाधिकार) अधिनियम, सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम व राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम* तथा *सशस्त्र बल (जम्मू–कश्मीर) विशेषाधिकार अधिनियम* को खारिज़ किया जाना चाहिए, क्योंकि यह दंडमुक्ति प्रतिपादित करता है और इसका इस्तेमाल मानवाधिकार रक्षकों के ख़िलाफ़ किया जाता है।
- दलित महिलाओं के अधिकारों के उल्लंघन पर दंडमुक्ति की संस्कृति, अनुसूचित जातियों व जनजातियों के ख़िलाफ़ होने वाले अत्याचारों की शिकायतें पर पड़ताल की कमी, के कारण निम्न दंड–दर तथा ऐसे मामलों पर कार्रवाई न हो पाने जैसे परिणाम सामने आते हैं। महिला अधिकारों पर विशाल परियोजनाओं के प्रभाव पर गहन अध्ययन किया जाना चाहिए, जिसमें आदिवासियों तथा ग्रामीण समुदायों पर उनके प्रभाव और सुरक्षा उपाय भी शामिल हों।
- सरकार को हिदायत दी गई कि *सांप्रदायिक हिंसा (रोकथाम, नियंत्रण और पीड़ितों का पुनर्वास) बिल,* 2005 शीघ्र पारित करे। इस क़ानून में "यौनिक, लैगिंक व सांप्रदायिक दंगों के दौरान औरतों पर व्यापक अपराधों को शामिल किया जाए; और जिनमें इस तरह के अपराधों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए एक व्यापक प्रतिकार तंत्र तथा लिंग संवेदनशील, पीड़ित–केंद्रित प्रक्रिया और स्पष्ट नियमों का प्रावधान हो जिससे सांप्रदायिक दंगों में राज्य अधिकारियों की निष्क्रियता और मिलीभगत को इस क़ानून के तहत सम्बोधित किया जा सके।"

रशीदा मांजू की भारत यात्रा के समग्र निष्कर्ष उनकी रिपोर्ट में शामिल किये जाएंगे जो जून 2014 में संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद के समक्ष पेश की जायेगी।

अभियान

वर्मा आयोग के सुझाव

महिलाओं के प्रति *बढ़ते यौन अपराधों और आपराधिक क़ानून में संशोधन की मांग के चलते सरकार ने 23 दिसम्बर 2012 वर्मा आयोग का गठन किया। इस आयोग की अध्यक्षता पूर्व प्रमुख न्यायाधीश जे.एस वर्मा ने की। आयोग के अन्य दो सदस्य थे– अवकाश प्राप्त न्यायाधीश लीला सेठ और पूर्व सॉलिसिटर जनरल गोपाल सुब्रमणियम। समस्त देश से लगभग सत्तर हज़ार सुझावों, नागरिक समूहों, कार्यकर्ताओं और अन्य पणधारियों के साथ विचार विमर्श के बाद समिति ने निम्न प्रमुख प्रस्ताव सरकार के सामने रखे:*

1. बलात्कार की सज़ा: फांसी की सज़ा को नामंजूर करते हुए आयोग ने बलात्कार के लिए सात साल कैद, महिला की मौत अथवा मरणासन्न अवस्था पाए जाने पर बीस वर्ष या आजीवन कारावास की सज़ा (आजीवन के मायने अपराधी के समूचे जीवन काल से है), सामूहिक बलात्कार के लिए बीस वर्ष की कठोर सज़ा और मौत हो जाने पर आजीवन कारावास की सज़ा का प्रस्ताव रखा। अपराध की संगीनता को ध्यान में रखते हुए बीस वर्ष की सज़ा किसी भी मामले में आजीवन कारावास में तब्दील की जा सकती है।

2. अन्य यौन अपराधों की सज़ा: आयोग ने हर प्रकार के यौन अपराधों की रोकथाम की ज़रूरत पर ज़ोर देते हुए प्रस्ताव रखा— दर्शनरति (व्वॉयरिज़्म) के लिए सात वर्ष जेल की सज़ा, स्टॉकिंग और लगातार सम्पर्क साधने के प्रयास में कम से कम तीन वर्ष; तेज़ाबी हमले के लिए सात वर्ष व यौन कर्म के लिए अवैध मानव तस्करी के लिए सात से दस वर्ष की कठोर सज़ा।

3. शिकायत दर्ज कराना और चिकित्सीय परीक्षण: बलात्कार का हर मामला पुलिस थाने में दर्ज किया जाना चाहिए। अगर कोई अफ़सर बलात्कार की रिपोर्ट दर्ज नहीं करता या जांच–पड़ताल में रोक लगाता है तो उसे इस अपराध की सज़ा दी जाएगी। बलात्कार के बाद चिकित्सीय परीक्षण के नियमों का भी उल्लेख किया गया है। नागरिक समाज से अनुरोध है कि बलात्कार का हर मामला थाने में दर्ज कराने में मदद करें। आयोग के विचार में "नयाचार आधारित व्यावसायिक चिकित्सीय परीक्षण" एक समान व्यवहार और कार्यान्वयन के लिए बेहद महत्वपूर्ण है।

4. विवाह पंजीकरण: भारत में होने वाले सभी विवाहों का पंजीकरण (चाहे किसी भी धार्मिक क़ानून के तहत किए हो) मजिस्ट्रेट के समक्ष किया जाना अनिवार्य है। मजिस्ट्रेट यह सुनिश्चित कर कि विवाह दोनों पक्षों की पूरी व स्वायत्त सहमति के साथ, बिना दहेज किया गया है।

5. जुर्म संहिता प्रक्रिया में संशोधन: मौजूदा आपराधिक क़ानून संशोधन अधिनियम 2012 में सुधार का प्रस्ताव रखते हुए आयोग ने कहा, 'चूंकि पुरुषों पर यौन हमले तथा समलैंगिकों, विपरीतलिंगी व पारलिंगी व्यक्तियों के साथ बलात्कार एक वास्तविकता है लिहाज़ा क़ानूनी प्रावधान इसके प्रज्ञाता होने चाहिए। विकलांग व्यक्तियों को बलात्कार से सुरक्षित रखने व उन्हें न्याय दिलवाने के लिए आवश्यक प्रक्रियाएं एक "तात्कालिक" ज़रूरत है। आयोग ने यह भी उल्लेख किया कि औरतों के अधिकारों को स्वीकार करने का तरीका यही है कि उनकी न्याय तक पूरी पहुंच रहे और न्याय उनके हितों को ध्यान में रखे।

6. महिला अधिकार विधेयक महिलाओं के लिए एक अलग अधिकार विधेयक जो उन्हें एक गरिमा व सुरक्षा की ज़िंदगी के साथ संबंधों में यौन स्वायत्तता का हक़ भी सुनिश्चित करे।

7. "अफसपा" का पुनरीक्षण: आयोग का मत है कि "अफसपा" अधिनियम संरचात्मक (सैन्य बल विशेष अधिकारी अधिनियम) यौन हिंसा को दण्ड मुक्ति को वैधता प्रदान करता है। जिन क्षेत्रों में यह क़ानून लागू है वहां इसका पुनरीक्षण करने की ख़ास ज़रूरत है। आयोग का यह भी सुझाव है कि संघर्ष ग्रस्त क्षेत्रों में महिलाओं की सुरक्षा के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किए जाएं।

8. पुलिस सुधारः जनता का विश्वास बढ़ाने के लिए उत्कृष्ट काबलियत और चरित्र के लिए प्रतिष्ठित पुलिस अफ़सरों को पुलिस दल में वरिष्ठ ओहदों पर नियुक्त किया जाना चाहिए। सभी मौजूदा नियुक्तियों का पुनरीक्षण "नैतिक दृष्टिकोण" के आधार पर किया जाना चाहिए। आयोग ने हिदायत दी है कि क़ानून कार्यान्वयन निकाय राजनैतिक आकाओं के हाथ की कठपुतली बनकर न रह जाए। पुलिस सेवा के हर सदस्य को यह समझना होगा कि अपनी ड्यूटी निभाते समय उनकी जवाबदेही सिर्फ़ क़ानून के प्रति है, किसी व्यक्ति या संस्था के प्रति नहीं।

9. न्यायपालिका की भूमिकाः न्यायपालिका की प्रमुख भूमिका है संवैधानिक प्रतिकार के माध्यम से बुनियादी अधिकारों का कार्यान्वयन। न्यायपालिका इनसे जुड़े मुद्दों को उच्च व सर्वोच्च न्यायालय दोनों स्तर पर उठा सकती है। इस मुद्दे से निपटने के लिए एक अखिल भारतीय कार्यनीति लागू करना अच्छा रहेगा। न्यायिक पक्ष की ओर से उपयुक्त कार्रवाई शुरू करने के लिए प्रमुख न्यायाधीश से अपील की जा सकती है। प्रमुख न्यायाधीश लापता बच्चों की अवैध तस्करी पर अंकुश लगाने के लिए उपयुक्त आदेश जारी करने का हक़ रखते हैं।

10. राजनैतिक सुधारः राजनीति के आपराधीकरण से निपटने के लिए आयोग ने कुछ सुधार प्रस्तावित किए। आयोग ने उल्लेख किया है कि अगर मजिस्ट्रेट किसी अपराध के प्रज्ञाता हैं तो उम्मीदवार को चुनावी प्रक्रिया से वंचित किया जाना चाहिए। अगर कोई उम्मीदवार अपने ख़िलाफ़ आरोपों का खुलासा नहीं करता तो उसे भी अयोग्य करार दिया जाएगा। आयोग का यह भी सुझाव था कि आरोपी सांसद, विधायक व मंत्री तथा अन्य क़ानून बनाने वालों को स्वेच्छा से इस्तिफ़ा देकर अपनी सीट छोड़ देनी चाहिए।

कविता

सवारा*

पवन करण

तेरी ये कैसी वीरता मेरे वीरन
अपने नाम के लिए
ले लेता तू किसी की जान
और जान बचाने के लिए अपनी
सवारा में मुझे सौंप देता
ज़िन्दगी भी दुश्मन के यहां स्वपने?

मेरे वीरन हाट बाज़ार से बिना झगड़े
लौट आना, लौट आना, ओरे बापू
बिना मरे-मारे चौक-चौबारे
से घर वापस
वीरन तेरी उंगली पकड़कर चली मैं
बापू तेरे कंधे चढ़कर खेली मैं।

देख हो न जाए तेरे हाथों कहीं अनर्थ
कि गुस्से में तू एक नहीं दो-दो
हत्याएं कर बैठे, जिसमें एक मेरी भी
पता नहीं फिर भुलह के बदले
जो तुझसे ले जाए मुझे अपने यहां
वो मुझे अपने घर कैसे रखे?

सबके आगे क्या कहकर पुकारे,
क्या कहकर दिखाए मुझे सबको?
मैं वहां कैसे जियूं और कब मरूं।
अपने जूतों की चरर मरर करता
वह जब भी उतरे मेरे भीतर
अपनी मूछे मरोड़ता हुआ ही उतरे।

पवन करण, *हिन्दी साहित्य के कवि हैं।*

**पाकिस्तान के कबाइली समाज का एक रिवाज जिसमें अगर बाप भाई, चाचा किसी का कत्ल कर दें तो उसको माफ़ कराने के लिए कातिल के घर की बेटी, बहन या भतीजी मकतूल के किसी करीबी रिश्तेदार को ब्याह दी जाती है।*

आपराधिक क़ानून संशोधन अधिनियम 2013

कुछ प्रमुख अंश

परिचयः पिछले कई वर्षों से आपराधिक क़ानून में सुधार लाने की बात की जा रही है। 16 दिसम्बर 2012 के हादसे ने इस मांग को और अधिक मुखर कर दिया जिसके फलस्वरूप वर्मा आयोग के सुझावों को मद्देनज़र रखते हुए संसद ने 4 अप्रैल 2013 में इस क़ानून में संशोधन को मंजूरी देते हुए इसे लागू करने का आदेश जारी किया। इस सुधार अधिनियम ने आपराधिक क़ानून की प्रमुख धाराओं में बदलाव किए जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

भारतीय दंड संहिता में विशेष संशोधन

एस. 326ए—तेजाबी हमला/क्षयकारी पदार्थ से हमला

तेजाब या अन्य क्षयकारी पदार्थ फैंककर चोट, नुकसान या विकृत करने के इरादे से किये गये हमले में दोषी को दस साल की सज़ा अथवा जुर्माना सहित उम्र कैद की सज़ा दी जा सकती है। जुर्माने की रकम पीड़ित को पहुंचे नुकसान की भरपाई/चिकित्सीय सेवाओं के अनुकूल तय की जाएगी।

एस. 326बी—तेजाबी हमले का प्रयास

तेजाब या अन्य क्षयकारी पदार्थ से हमले की कोशिश के लिए कम से कम पांच और अधिक से अधिक सात वर्ष की कठोर सज़ा का प्रावधान।

एस. 354ए—यौन उत्पीड़न

निम्न में से किसी भी कार्रवाई को यौन उत्पीड़न समझा जाएगाः

– अनचाहा शारीरिक स्पर्श
– यौन प्रस्ताव/मांग
– अश्लील साहित्य/फोटो/पोर्नोग्राफ़िक सामग्री दिखाना
– यौन अर्थ वाले जुमले, संकेत, लतीफ़े

इन सभी अपराधों के लिए एक वर्ष की कैद का प्रावधान किया गया है।

एस. 354बी—निर्वस्त्र करने का प्रयास

किसी भी महिला को ज़बरदस्ती कपड़े उतारने या निर्वस्त्र होने को बाध्य करने के जुर्म की सज़ा एक से तीन वर्ष, जुर्माना सहित दी जा सकती है। इस सज़ा को मामले की गंभीरता को ध्यान में रखते हुए कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात वर्ष, जुर्माना सहित बढ़ाया जा सकता है।

एस. 354सी—दर्शनरति (व्वायरिज़्म)

'निजी' गतिविधि करती हुए महिला को उसकी जानकारी के बगैर की घर, सार्वजनिक शौचालय, एकांत जगहों पर देखने या कैमरे में फोटो खींचने पर, जहां उसे देखे जाने की उम्मीद न हो, के लिए जुर्माना सहित एक से तीन वर्ष सज़ा का प्रावधान है। अपराध साबित हो जाने पर सज़ा को सात वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है। इस तरह की निजी गतिविधि के फोटो या चित्रों का वितरण भी अपराध की श्रेणी में आएगा।

एस. 354डी—स्टॉकिंग

किसी महिला का जबरन पीछा करना या उसे परेशान करने की कोशिश, खुलेआप, छिपकर या उसके फ़ोन, इंटरनेट, ईमेल या अन्य संचार उपकरणों की ताका–झांकी को अपराध की श्रेणी में शामिल किया गया है। जुर्म की रोकथाम

या क़ानूनी कार्रवाई अथवा किसी जायज कारण का उल्लेख किये बगैर इस तरह की कोई भी गतिविधि अपराध मानी जायगी जिसके लिए 3 से 5 वर्ष तक सज़ा या कैद, जुर्माना सहित दिये जाने का प्रावधान है।

एस. 376डी — बलात्कार

बलात्कार की परिभाषा को व्यापक बनाते हुए इसमें निम्न भी जोड़े गये हैं। अगर कोई पुरुष

- महिला के मुंह, योनि, गुदा या मूत्रमार्ग में कोई वस्तु या शरीर का अंग डालता है या उसकी इजाज़त के बिना ज़बरदस्ती उसे अपने या किसी अन्य के साथ ऐसा करने को मजबूर करता है;
- अपना मुंह उसके मुंह, योनी, गुदा, मूत्रमार्ग पर लगाता है या किसी अन्य के साथ लगाने को बाध्य करता है; या
- उसके शरीर में कुछ जबरन घुसेड़ने या किसी अन्य के साथ ऐसी कोई हरकत करने या करवाने को बाध्य करता है; या
- अगर महिला की उम्र 18 वर्ष से कम हो; या
- अगर उसकी मर्ज़ी/सहमति "अस्पष्ट" हो तो इसे बलात्कार माना जाएगा।

कई परिस्थितियों में सहमति "अस्पष्ट" हो सकती है उदाहरण के लिए – नशे की हालत में, बेहोशी, दवा के असर या कोमा की हालत में, धमकी या डर की हालत में, या अगर महिला यह नहीं समझ पाती कि वह किस बात की सहमति दे रही है (भाषा न आने पर, मानसिक कमज़ोरी, विकलांगता, अक्षमता या पागलपन में)।

इस श्रेणी के अपराध की सज़ा जुर्माने के साथ 7 वर्ष से लेकर उम्रकैद तक हो सकती है। इस अपराध में शारीरिक विरोध की कमी या अभाव को सहमति नहीं समझा जा सकता। 'पेनिट्रेशन' किस हद तक किया गया इस बात का अपराध से कोई संबंध नहीं होगा, छोटे से छोटा या कम से कम 'पेनिट्रेशन' अपराध की श्रेणी में शामिल किया जाएगा।

एस. 376(2) — संगीन बलात्कार

अभी तक संगीन बलात्कार की श्रेणी में हिरासत में बलात्कार, पुलिसकर्मी, सेनाकर्मी, संस्थानों के आधिकारिक पदाधिकारी, वर्दीधारी पुरुष द्वारा बलात्कार शामिल किये जाते थे। अब इसमें ऐसे बलात्कार मामलों को भी शामिल किया गया है जिसके परिणाम स्वरूप महिला मानसिक अक्षमता या शारीरिक विकलांगता का सामना कर रही हो। संशोधन के बाद निम्न परिस्थितियों में कम से कम सात वर्ष की सज़ा का प्रावधान किया गया है।

- सहमति देने में असमर्थ महिला के साथ बलात्कार;
- आधिकारिक पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा बलात्कार;
- एक ही महिला के साथ बार–बार बलात्कार;
- बलात्कार जिसके परिणाम स्वरूप महिला शारीरिक रूप से विकलांग या मानसिक तौर पर असक्षम हो गई हो उसको गंभीर चोटें आई हों;
- गर्भवती महिला के साथ बलात्कार;
- सोलह वर्ष से कम उम्र की लड़की के साथ बलात्कार;
- साम्प्रदायिक हिंसा के दौरान बलात्कार।

एस. 376ए— मृत्यु या निष्क्रिय अवस्था में पहुंचाने के अपराध की सज़ा

इस खण्ड के अनुसार पीड़ित की मृत्यु हो जाने पर या उसे हमेशा के लिए निष्क्रिय अवस्था में पहुंचाने के अपराध के लिए आजीवन कारावास या मृत्युदण्ड का प्रावधान किया गया है।

एस. 376सी— हिरासत में बलात्कार

अधिकारिक पद का दुरुपयोग कर महिला को यौन संबंध के लिए मजबूर करने, (जो ऐसे दर्शाया जाए जैसे सहमति के साथ बनाया रिश्ता हो) पर कम से कम पाच और अधिकतम दस वर्ष की सज़ा दी जा सकती है।

एस. 376डी— सामूहिक बलात्कार

सामूहिक बलात्कार की सज़ा दस साल से बढ़ाकर बीस वर्ष कर दी गई है।

एस. 376ई—आदतन अपराधी की सज़ा

सामूहिक बलात्कार की सज़ा काट चुके व्यक्ति को दोबारा अपराध करने पर उम्र कैद या मृत्युदण्ड की सज़ा का प्रावधान किया गया है।

अपराध प्रक्रिया संहिता में सशोधन

एस. 54—आरोपी की शिनाख्त

अगर आरोपी की शिनाख्त करने वाला व्यक्ति मानसिक या शारीरिक रूप से अक्षम या विकलांग है तो यह प्रक्रिया– न्यायिक मजिस्ट्रेट की निगरानी में की जाएगी अथवा वीडियोग्राफी के ज़रिए की जाएगी।

एस. 154— बयान दर्ज करने की प्रक्रिया

पीड़ित महिला का बयान धारा एस 376/354/509 या इससे जुड़ी धाराओं के तहत महिला पुलिस अफसर अथवा महिला अधिकारी द्वारा दर्ज किया जायेगा।

अगर पीड़िता अस्थाई या स्थाई तौर पर मानसिक रूप से विकलांग है तो बयान–

- वीडियोग्राफ़ी के ज़रिए;
- पीड़ित महिला के आराम का ध्यान रखते हुए;
- एक विशिष्ट दुभाषिये या अनुवादक की मौजूदगी में दर्ज किया जाएगा।

एस. 309— सुनवाई

चार्जशीट दाखिल होने के दो माह के भीतर जहां तक संभव वो मामले की सुनवाई पूरी हो जानी चाहिए।

एस. 357बी— पीड़ित को मुआवज़ा

धारा एस 357 ए के अंतर्गत राज्य द्वारा दिये जाने वाले मुआवज़े के अतिरिक्त आरोपी को भारतीय दंड संहिता की धारा 326 ए 376 डी के तहत मुआवज़े की रकम अदा की जाएगी।

एस. 357सी—पीड़ित का इलाज/चिकित्सीय जांच

धारा 326 ए/376 के तहत दर्ज अपराधों के पीड़ितों को सरकारी व निजी सभी अस्पताल मुफ्त चिकित्सीय जांच/इलाज की सुविधा प्रदान करेंगे तथा किसी भी ऐसी वारदात की पुलिस को इत्तला करेंगे।

साभारः फ्लेविया एग्निस, मजलिस मुंबई

देश में औरत अगर बेआबरू, नाशाद है
दिल पे रख कर हाथ कहिए, देश क्या आज़ाद है

चूल्हा चौका चारदीवारी बचपन में सौंपे गये
ढेर ज़िम्मेदारियों के ज़बरन ही थोपे गये

बेटी वो पौधा है जिसको रोशनी ना जल मिले
ऐसा है वो फूल जो खिल सकता है पर ना खिले

क्या है बचपन क्या शैतानी और नादानी है क्या
बेटियां न जान पाई मौज के मानी हैं क्या

चेहरा फीका नज़रें नीचीं कैसी ये बुझ सी गईं
ये न हों रोशन तो होगा कोई घर रोशन नहीं

आधी शिक्षा आधी सेहत मज़दूरी आधी मिली
देश हुआ आज़ाद पर हमको न आज़ादी मिली

कम उमर में शादी की गाड़ी में ये जोती गईं
बच्चियां बन-बन के माएं ज़िंदगी खोती गईं

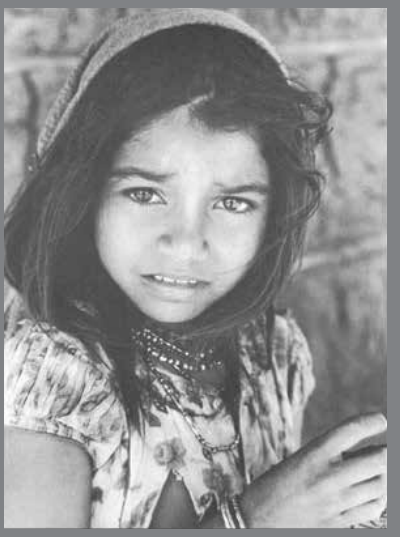

बदनीयत से भी डरें और हर नज़र से हम डरें
फ़रियाद हम किस से करें गर हाथ अपनों के बढ़ें

चुप हैं लेकिन ये न समझो हम सदा को हारे हैं
राख़ के नीचे अभी भी जल रहे अंगारे हैं

बालिकाओं पर नौ पोस्टरों का सेट
अवधारणा व कविता: कमला भसीन
फ़ोटो: यूनिसेफ़, नई दिल्ली
प्रकाशन: जागोरी

मैं बच गई मां

ज़ेहरा निगाह

मैं बच गई मां
मैं बच गई मां
तेरे कच्चे लहू की मेंहदी
मेरी पोर पोर में रच गई मां

मैं बच गई मां
मैं बच गई मां...

गर मेरे नक्श उभर आते
वो फिर भी लहू से भर जाते

मेरी आंखे रोशन हो जातीं
तो तेज़ाब का सुरमा लग जाता

सट्ठे बट्ठे में बंट जाती
या कारी में काम आ जाती
हर ख्वाब अधूरा रह जाता

मेरा कद जो थोड़ा सा बढ़ता
मेरे बाप का कद छोटा पड़ जाता

मेरी चुन्नी सर से ढलक जाती
तो मेरे भाई की पगड़ी गिर जाती

तेरी लोरी सुनने से पहले
मैं अपनी नींद में सो गई मां

अनजान नगर से आई थी
अनजान नगर में खो गई मां

मैं बच गई मां
मैं बच गई मां...

तेरे कच्चे लहू की मेंहदी
मेरी पोर पोर में रच गई मां
मैं बच गई मां...

ज़ेहरा निगाह, *पाकिस्तान की नारीवादी शायरा हैं।*

यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण क़ानून, 2012

कुछ प्रमुख अंश

14 नवंबर 2012 को यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण क़ानून 2012 लागू किया गया। यह बाल पीड़ितों की ज़रूरतों को वयस्क पीड़ितों के मुकाबले अलग तरह से मान्यता देने की दिशा में एक सराहनीय कदम है। इस क़ानून के तहत निम्न अपराधों के बारे में प्रावधान किए गए हैं:

- पेनिट्रेटिव और आक्रामक पेनिट्रेटिव यौन आक्रमण
- यौन हमला और आक्रामक यौन हमला (नॉन पेनिट्रेटिव)
- यौन उत्पीड़न तथा
- अश्लील उद्देश्यों के लिए बच्चे का इस्तेमाल करना

यह क़ानून केवल इन अपराधों को किए जाने पर ही नहीं बल्कि उनके प्रयासों पर भी सज़ा का प्रावधान करता है।

- धारा 3– में पेनिट्रेटिव यौन हमलों से जुड़े अपराधों के बारे का विवरण दिया गया है तथा धारा 4 में उसके लिए कम से कम सात साल तक की सज़ा का प्रावधान किया गया है जिसे आजीवन कारावास तक बढ़ाया जा सकता है।

  लिंग को किस गहराई तक घुसाया गया है, पेनिट्रेशन योनि में किया गया है या नहीं, यही तयशुदा मानक नहीं हैं, बल्कि इसमें बच्चे के मुंह, मूत्रमार्ग अथवा गुदा में पेनिट्रेशन जैसे आपराधिक कार्यों को भी शामिल किया गया है। किसी भी पदार्थ को घुसाना और मुख–मैथुन को भी इस क़नून के तहत पेनिट्रेटिव यौन आक्रमण के रूप में देखा गया है। यहां तक कि यदि कोई वयस्क किसी बच्चे को किसी अन्य के साथ ऐसा करने के विवश करता है, तो यह करना भी अपराध ही है।

- धारा 5– पेनिट्रेटिव यौन अपराधों के बारे में बात करती है। यह किसी आधिकारिक पद पर आसीन व्यक्ति द्वारा ऐसे कार्य किए जाने अथवा बच्चे को कोई नुकसान और चोट पहुंचाने के बारे में बात करती है। धारा 6 ऐसे अपराधों के लिए कम से कम दस साल की सज़ा का प्रावधान करती है जो आजीवन कारावास तक बढ़ाई जा सकती है। इसमें आधिकारिक व्यक्ति जैसे पुलिस अधिकारी, सशस्त्र/सुरक्षा बल, पुलिस सेवक,संरक्षण और देखभाल प्रदान करने वाला प्रबंधक अथवा कर्मचारी, अस्पतालों, शैक्षिक अथवा धार्मिक संस्थानों आदि का प्रबंधक अथवा कर्मचारी, रिश्तेदार अथवा पारिवारिक सदस्य द्वारा यौन आक्रमण, किसी बच्चे को सेवाएं प्रदान करने वाले किसी सत्ता/प्रबंधक/कर्मचारी अथवा बच्चे के विश्वसनीय अथवा प्राधिकृत व्यक्ति द्वारा उत्पीड़न भी शामिल है।

  चोट लगने के कारणों में शामिल हैं सामूहिक बलात्कार, पेनिट्रेटिव यौन आक्रमण के दौरान घातक हथियारों का प्रयोग, बच्चे के यौन अंगों को गंभीर चोट पहुंचाना, शारीरिक चोट आदि।

  इस धारा के तहत उन अपराधों को भी शामिल किया गया है जिनके कारण अथवा जिनके प्रभाव से बच्चे को मानसिक आघात पहुंचता है, उसके गर्भवती, एच.आई.वी. संक्रमित होने का ख़तरा उत्पन्न होता है, बच्चे की मानसिक अथवा शारीरिक विकलांगता का लाभ उठाते हुए पेनिट्रेटिव यौन आक्रमण करना, बच्चे के साथ बार–बार उत्पीड़न करना, 12 साल से कम उम्र के बच्चे पर यौन आक्रमण करना, किसी गर्भवती बच्ची पर यौनिक आक्रमण, यौन हमले के दौरान अथवा उसके बाद बच्चे की हत्या करना का प्रयास करना, सांप्रदायिक अथवा क्षेत्रीय हिंसा के दौरान यौन आक्रमण, अथवा यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के तहत पहले भी सज़ा प्राप्त कर चुका हो बच्चे को ऐसे कार्यों के बाद नंगा घुमाने जैसे कृत्यों को भी इसमें अपराध घोषित किया गया है।

- धारा 7– यौन आक्रमण को परिभाषित करते हुए यौनिक मंशा पर भी बात की गई है, और उसके बारे में धारा 8 के तहत सज़ा का प्रावधान किया गया है। इसके बाद धारा 10 आक्रामक यौन आक्रमण के लिए सज़ा का प्रावधान करती है जिसके बारे में धारा 9 में पेनिट्रेटिव यौन आक्रमण की भांति ही विस्तार से स्पष्ट किया गया है।
- धारा 14– बच्चे को अश्लील उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करने से जुड़े कार्यों के लिए सज़ा के बारे में बताती है जिसकी अपराध करने वाले व्यक्ति की भूमिका के आधार पर कई स्तर/डिग्री तय की गई हैं। धारा 13 अश्लील उद्देश्यों के लिए बच्चे के इस्तेमाल पर रोक लगाने वाले नियमों का प्रावधान करती है।

  यहां तक कि ऊपर बताए गए अपराधों को करने का प्रयास अथवा उनके लिए विवश करने को भी अपराध माना गया है।

  बच्चों को अधिकतम सुरक्षा प्रदान करने के लिए, यह क़ानून आदेश देता है कि कोई भी व्यक्ति जो ऐसे अपराधों की जानकारी रखता हो, उस बारे में विशिष्ट किशोर पुलिस इकाई अथवा स्थानीय पुलिस को सूचित करेगा। यह अधिनियम किसी मीडिया अथवा होटल अथवा अस्पताल, क्लबों अथवा स्टुडियोज़ अथवा फ़ोटोग्राफ़िक सुविधाओं में काम करने वाले लोगों को भी इस बारे में सूचना/सामग्री मिलने पर रिपोर्ट दर्ज कराने की ज़िम्मेदारी सौंपता है। उपरोक्त सदर्भ में सूचना दर्ज न कराने अथवा झूठी सूचना देने वालों को इस अधिनियम की धारा 21 के तहत 6 माह तक की कैद अथवा जुर्माना अथवा दोनों की सज़ा दी जा सकती है।

  यह क़ानून बच्चे के बयान को दर्ज करने अथवा उसकी चिकित्सकीय जांच की प्रक्रिया के बारे में विस्तार से बात करता है। यह ध्यान देना ज़रूरी है कि बच्चे की चिकित्सकीय जांच एफ़.आई.आर. दर्ज कराने से पहले भी की जा सकती है। बच्चे के साथ पूछताछ सादा कपड़ों में पुलिस अधिकारी द्वारा पुलिस थाने के बाहर, किसी ऐसे स्थान पर की जानी चाहिए जहां बच्चा सहज महसूस करे।

पुलिस द्वारा पालन की जाने वाली प्रक्रियाएं

1. शिकायत किए जाने के साथ ही तुरंत एफ़.आई.आर दर्ज की जानी चाहिए।
2. बच्चे को तत्काल चिकित्सकीय जांच की जानी चाहिए।
3. अभियुक्त को पीड़ित से संपर्क करने की अनुमति नहीं दी जा सकती।
4. बच्चे को रात में पुलिस थाने में नहीं रखा जाना चाहिए।

पीड़ित का बयान दर्ज करना

1. कहां दर्ज करें– बच्चे के निवास अथवा ऐसी जगह पर जहां वह सहज महसूस करता/करती हो।
2. कौन दर्ज करे– पुलिस अधिकारी जो वर्दी में न हो और उप–निरीक्षक (सब–इंस्पेक्टर) से कम पद पर न हो।
3. कैसे दर्ज करें– बयान को सवाल–जवाब के रूप में दर्ज किया जाना चाहिए।
4. यदि बच्चा/बच्ची शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अक्षम हो अथवा उसकी अलग भाषा हो, तो उसे दुभाषिया तथा अनुवादक मुहैय्या कराया जाए और उसकी सेवाओं के लिए भुगतान किया जाए।

यदि संभव हो तो बयान की ऑडियो–वीडियो रिकॉर्डिंग की जानी चाहिए। ऐसा कोई व्यक्ति इस मौके पर मौजूद हो जिस पर बच्चे को भरोसा हो।

बाल कल्याण समिति के समक्ष बच्चे को पेश करना

अगर ज़रूरत हो तो बच्चे को बाल कल्याण समिति के समक्ष पेश किया जाना चाहिए– ख़ासतौर से उन मामलों में जहां अभियुक्त कोई पारिवारिक सदस्य अथवा सत्ताधारी पद पर हो। बच्चे की पहचान के बारे में मीडिया को नहीं बताया जाना चाहिए।

चिकित्सकीय जांच की प्रक्रियाएं

1. यदि पीड़ित बच्ची है तो चिकित्सकीय जांच महिला डॉक्टर द्वारा ही की जानी चाहिए।
2. जिस व्यक्ति पर बच्चे को यकीन हो उसे चिकित्सकीय जांच के समय उपस्थित रहने की अनुमति दी जानी चाहिए। अगर ऐसा कोई व्यक्ति मौजूद न हो तो चिकित्सा संस्थान द्वारा अनुमोदित कोई महिला मेडिकल जांच के समय बच्चे के साथ मौजूद होनी चाहिए।

विशिष्ट अदालतें

- क़ानून के तहत अपराधों के परीक्षण के लिए विशिष्ट सत्र अदालत नियुक्त की जानी चाहिए।
- विशेष सरकारी वकील की नियुक्ति की जानी चाहिए। यह सरकारी वकील 7 साल से कम की वकालत का अनुभव न रखता हो।
- दोष साबित करने का दायत्व आरोपी पर सौंपा गया है।
- अदालत अनिवार्य रूप से यह मानेगी कि आरोपी यौनिक आक्रमण के समय पूरे होशो–हवास में था।
- अदालत स्वयं ऐसे अपराध का संज्ञान सीधे तौर पर ले सकती है यदि उसे ऐसे किसी अपराध को किए जाने का पता चलता है।
- विशिष्ट अदालत में महिला जज होनी चाहिए। बच्चे से सभी सवाल महिला जज द्वारा ही संवदेनशील तरीके से पूछे जाने चाहिए। सवाल करने का तरीका आक्रामक नहीं होना चाहिए। जज के अलावा, किसी और को बच्चे से प्रत्यक्ष रूप से सवाल पूछने की इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए।
- अदालत को बच्चे को बयान दर्ज कराए जाते समय बच्चे के लिए थोड़े–थोड़े समय पर अवकाश देना चाहिए।
- विशिष्ट अदालत किसी ऐसे व्यक्ति को अदालत में उपस्थिति रहने की अनुमति प्रदान कर सकती है जिसके साथ बच्चे को सहजता महसूस हो।
- बच्चे की पहचान गुप्त रखी जानी चाहिए।
- अदालत, सज़ा के अलावा, बच्चे को होने वाली शारीरिक हानि अथवा मानसिक आघात के लिए मुआवज़ा भुगतान किए जाने का प्रावधान कर सकती है।
- अगर किसी बच्चे द्वारा अपराध किया गया है, तो उस बच्चे के साथ किशोर न्याय (बाल देखभाल और सुरक्षा) अधिनियम 2000 के प्रावधानों के अनुसार व्यवहार किया जाना चाहिए। यदि उम्र के बारे में दुविधा हो तो, इस बारे में अदालत द्वारा फ़ैसला किया जाना चाहिए तथा इसका कारण लिखित में अनिवार्यतः दर्ज किया जाना चाहिए। (धारा 34) अगर बाद में यह पाया जाता है कि अदालत द्वारा तय की गई बच्चे की उम्र सही नहीं थी तो अदालत के निर्णय को गलत नहीं ठहराया जा सकता।
- बच्चे की गवाही अदालत द्वारा अपराध का संज्ञान लिए जाने के 30 दिन के भीतर दर्ज किया जाना चाहिए। अगर इसमें कोई देरी होती है तो उसका कारण लिखित में दर्ज किया जाना चाहिए।
- यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि साक्ष्य देते समय बच्चे को अभियुक्त दिखाई न दे।
- सुनवाई/परीक्षण कैमरा में होनी चाहिए अर्थात् बंद कमरे में सुनवाई/परीक्षण होनी चाहिए। किसी भी आम जनता अथवा ऐसे किसी भी वकील को अदालत में उपस्थित रहने की इजाज़त नहीं दी जानी चाहिए जिसका मामले से संबंध न हो (धारा 37)। यदि अदालत में बच्ची का बयान दर्ज किया जा रहा हो तो अदालत जांच अधिकारी को भी बाहर जाने के लिए कह सकती है।

साभारः फ्लेविया एग्निस, मजलिस, मुंबई

संवाद

बच्चों पर विश्वास करना ज़रूरी है...

जुही जैन

'पाक्सो' क़ानून पास हो गया है, और इसके कार्यान्वयन पर भी हम काफी सोच-विचार कर चुके हैं। परन्तु इसके साथ ही हमें ज़रूरत है कुछ खास बातों को समझने और ध्यान में रखने की। माता-पिता, भाई-बहन या अभिभावक, शिक्षिका होने के नाते बच्चों— फिर चाहे वे लड़के हो या लड़कियां, दोनों के साथ एक संवेदनशील संबंध बनाना भी ज़रूरी है। यौन हिंसा एक ऐसा मसला है जिस पर चुप्पी तोड़ना, उसके बारे में किसी को बताना बहुत मुश्किल होता है। फिर कम उम्र के बच्चों के लिए तो इस दर्दनाक सच्चाई से रूबरू होना और भी अधिक कठिन होता है। लिहाज़ा अपने रोज़मर्रा के जीवन में हमें अपने बच्चों के साथ एक ऐसा दोस्ताना रवैया बनाने की कोशिश करनी होगी जिससे वे हिंसा के इस रूप को समझने और इस पर बात करने के लिए सक्षम बन सकें।

बच्चों के साथ यौन हिंसा अक्सर दो तरीक़ो से काम में लाई जाती है। पहला तरीक़ा है बच्चे को औरत पर हिंसा के लिए हथियार के रूप में इस्तेमाल करना। दूसरा, बच्चों के साथ सीधे यौन शोषण, दुर्व्यवहार या शारीरिक छेड़छाड़ करना। दोनों ही हालात में बेहद ज़रूरी है कि बच्चे हिंसा के बारे में समझें तथा इससे सतर्क रहें। साथ ही ज़रूरत पड़ने पर अपने बचाव और मुक़ाबला करने की क्षमता और कौशल जानें। इस रक्षा-प्रतिरक्षा के लिए कुछ ख़ास/आम बातें ज़रूरी हैं।

रोज़मर्रा की कुछ आम सुरक्षा

- सबसे पहले हर बच्चे को अपना पूरा नाम, माता-पिता का नाम, घर का पता, फ़ोन नम्बर की जानकारी होनी चाहिए। इससे उन्हें अपनी पहचान करने में आसानी होगी।
- बच्चों को कुछ मूल बातों से परिचित कराएं मसलन फ़ोन का इस्तेमाल, ताला खोलना व बंद करना। ज़रूरत पड़ने पर बच्चों को पता होना चाहिए कि माता-पिता को कैसे सूचित किया जाए। किसी वजह से अगर बच्चों के माता-पिता न मिलें तो घर के कोई दूसरे सदस्य जैसे दादी-बाबा/नानी-नाना या किसी भरोसेमंद पारिवारिक दोस्त आदि के बारे में भी जानकारी हो।
- बच्चों के मन में अजनबियों का डर न भरें। बच्चों को यह बताएं कि ज़रूरत पड़ने पर वे किन अजनबियों से मदद ले सकते हैं जैसे पुलिस की वर्दी पहने लोग या पुलिसवाली, डॉक्टर, नर्स, पी.सी.आर. वैन, एम्बयुलैंस इत्यादि।
- हो सके तो बच्चों के पास कुछ ज़रूरी सेवाओं जैसे पुलिस, एम्बयुलैंस आदि के फ़ोन नम्बर रखें।

यह तो हुई कुछ मूल सुरक्षा की बातें जो बच्चे की परवरिश में फ़ायदेमंद साबित हो सकती हैं।

बच्चे व यौन हिंसा

पर कुछ बहुत ख़ास तरह की बातचीत है जो हमें अपने बच्चों, चाहे बेटी हो या फिर बेटा से अवश्य करनी चाहिए। इनमें सबसे अधिक अहम् बातचीत है छोटे बच्चों को यौन हिंसा से सावधान रहने, यौन हिंसा से बचने, उसे पहचानने और उसके बारे में बात करने की।

बच्चों पर यौन हिंसा क्यों होती है?

छोटे बच्चों के साथ यौन हिंसा करना बहुत आसान होता है। एक तो बच्चे की उम्र कम होती है और उसके लिए यौन हिंसा को जानना/समझना मुश्किल होता है। दूसरा, अधिकांश मामलों में यौन हिंसा करने वाले बच्चों के जानकार होते हैं जैसे रिश्तेदार-चाचा, मामा, भाई, दादा, नाना आदि, पड़ोसी, दोस्त, देख-रेख करने वाले घरेलू नौकर, ड्राइवर या फिर कोई अन्य क़रीबी व्यक्ति। ये व्यक्ति बच्चों को प्यार करते हैं और इसलिए बच्चा एक दुविधा में पड़ जाता है कि वास्तव में उसके साथ जो हो रहा है वह सही है या ग़लत।

यौन हिंसा पर समझ बनाएं

इसलिए यह बहुत ज़रूरी है कि हम अपने बच्चों को शुरू से ही यौन हिंसा से आगाह करें। यहां इस बात को भी मानना और समझाना-समझना ज़रूरी है कि यौन हिंसा हिंसा का शिकार सिर्फ़ छोटी बच्चियां ही नहीं होती। हां, छोटी लड़कियों के साथ इसकी तादाद ज़्यादा आम हो सकती है पर यौन हिंसा छोटे लड़कों को भी झेलनी पड़ती है। और छोटा बच्चा चाहे वह लड़का हो या लड़की इस प्रकार की हिंसा से जूझने के लिए तैयार नहीं होता।

यौन हिंसा के बारे में एक और अहम कड़ी यह है कि ऐसा करने वाले व्यक्ति अक्सर इसे एक खेल या फिर अपने और बच्चे के बीच एक 'गुपचुप' सीक्रेट' का रूप दे देते हैं। वह बच्चों को प्यार या फिर डरा-धमका कर यह यक़ीन दिलाते हैं कि यह बात उन दोनों के बीच में रहनी चाहिए। अगर यह बात बच्चे ने मां-बाप को बताई तो कुछ बहुत बुरा हो जाएगा। इसलिए इसे चुपचाप सहने के अलावा बच्चे के पास कोई विकल्प नहीं होता।

माता पिता या फिर भाई-बहन होने के नाते हमें चाहिए कि हम अपने बच्चों को 'अच्छे' व 'बुरे' स्पर्श से अवगत कराएं। बच्चे संवेदनशील होते हैं, वह अपने मन की अच्छी व बुरी भावनाओं को बखूबी पहचानते हैं। उन्हें बतायें कि अगर कोई भी उन्हें छूता है, चूमता है या फिर उनके जननांगों को सहलाता-दबाता है और उन्हें वह अच्छा नहीं लगता तो वे तुरन्त मां-बाप, भाई-बहन, टीचर या फिर जिसे वह चाहें इसके बारे में फ़ौरन बताएं। बच्चों को यह भी समझाएं कि अगर कोई उन्हें इस तरह प्यार करे, सहलाए या चूमे, जो उन्हें अच्छा नहीं लग रहा हो तो वे उसका तुरन्त विरोध करें- 'नहीं, मुझे ऐसे मत छुओ', 'दूर हटो', यह ग़लत है।' इस तरह के वाक्य वे ज़ोर से बोल सकते हैं। ऐसा करने से बच्चों को यक़ीन हो जायेगा कि अगर वह किसी बड़े या बुजुर्ग को इस हरकत के लिए मना करते हैं तो इस पर उन्हें डांट नहीं सुननी पड़ेगी। साथ ही आसपास के अन्य व्यक्तियों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होगा जिससे हिंसक घबरा सकता है।

यह हमारा भी इम्तिहान है

बच्चों की इस ट्रेनिंग के साथ-साथ हम बड़ों को चाहिए कि हम अपने बच्चों पर नज़र रखें। बच्चे के व्यवहार में किसी तरह का ख़ास परिवर्तन यौन हिंसा का सूचक हो सकता है। अगर बच्चा किसी व्यक्ति से अचानक डरने लगे या उसके सामने आने से कतराये या एकदम सहम कर ख़ामोश हो जाए तो यह आवश्यक है कि आप बच्चे से प्यार के साथ बात करें। उससे पूछे कि उसके इस डर का क्या कारण है। उसे यक़ीन दिलाएं कि जो भी वह चाहे वह आपको कह सकते हैं बिना हिचक, बिना डरे। और आपको बच्चे के ऊपर विश्वास और यकीन करना है।

एक अन्य स्थिति जिससे हमें परेशानी या कश्मकश का सामना करना पड़ सकता है वह है जब हमारे बच्चे का अपना बाप या मां अपने बच्चे के साथ यौन हिंसा करे। सगे बाप या मां के अलावा काफ़ी ऐसे मामले भी सामने आए हैं जिसमें औरत का दूसरा पति (या माता) यानी बच्चे के सौतेले बाप-मां बच्चे के साथ यौन हिंसा करते हैं। हो सकता है आप इस से अनभिज्ञ हों पर यह भी हो सकता है कि आप सब कुछ जानते हुए भी ख़ामोश हों। यह आपका अपना इम्तिहान है। यक़ीकन इसे चुनौती देकर आप अपने सबसे अंतरंग संबंध को चुनौती दे रही हैं। पर याद रखिए कि इसे नकार कर या इसे अनदेखा करके आप अपना और बच्चे का भविष्य, उसका विश्वास और समूचा आस्तित्व कसौटी पर खड़ा करेंगी। फ़ैसला किसके हक़ में लेना है इसका निर्णय तो आपके अपने हाथ में है। पर सच बात तो यह है कि इस यौन हिंसा की मुख़ालफ़त आपको ही करनी होगी, अपनी पूरी हिम्मत और पूरी ईमानदारी के साथ।

काफ़ी दफ़ा हम सोचते हैं कि हमारे क़रीबी अपने हमारे ही बच्चों के साथ कोई ग़लत व्यवहार या यौन हिंसा जैसी हरकत नहीं कर सकते। पर यह सही नहीं है। बच्चे ऐसे मामलात में झूठ नहीं बोलते। इसलिए उनकी बात मानें और उनकी मदद करें। याद रखिए सही वक़्त पर लिया गया एक छोटा सा क़दम और एक छोटी सी अगुवाई बच्चे और आपके दोनों के लिए भविष्य में बहुत फ़ायदेमंद साबित होगी। इस समस्या को आज और अभी सम्बोधित करके हम बच्चों को भावनात्मक और शारीरिक परेशानियों से बचा सकते हैं। हो सकता है कि किसी यौन हिंसा की घटना के बारे में साफ़ बात करने या दोषी व्यक्ति का सामना करने के लिए आपको अपनी दोस्ती या अपने नज़दीक़ी रिश्तों को दांव पर लगाना पड़े। पर हिचकिचाएं नहीं और न ही इसके लिए शर्मिन्दा हों। यह ज़रूरी है और फिर ऐसे रिश्तों का क्या लाभ जो आपको और आपके अपनों को प्यार और सम्मान की जगह चोट और हिंसा पहुंचाएं।

बच्चे बहुत समझदार और चतुर होते हैं। आपके थोड़े से सहयोग से वे अपनी मदद ख़ुद कर पाएंगे। आप उन्हें निडर, सतर्क और ज़िम्मेदार बनाएं। इसके लिए उन्हें किसी जूडो

कराटे सिखाने वाली कक्षा में दाख़िला लेना ज़रूरी नहीं हैं। ज़रूरी है शारीरिक क्षमता, दिलेरी और अपने आत्म-विश्वास को मज़बूत बनाए रखने की। मार्शल तकनीक आदि आत्म-विकास व आत्म-विश्वास बढ़ाने के लिए अच्छे साधन हो सकते हैं पर अपने शरीर पर हक़ और भावनाओं पर इख़्तियार करने की शुरुआत जितनी जल्दी हो उतना बेहतर है। अन्य हिंसा की तरह बच्चों पर यौन हिंसा के मामलों में भी पुलिस या क़ानूनी मदद ली जा सकती है। पर सबसे पहले परिवार और समाज को भी इसके प्रति जागरूक बनाना बेहद ज़रूरी है।

यौन हिंसा अपराध है

सारांश यही है कि बच्चों पर किसी भी तरह की यौन हिंसा, चाहे वह प्यार से की गई हो या बहला-फुसला-धमका कर, एक घिनौना अपराध है। इसे अपराध मानकर ही इसका समाधान करना वक़्त की मांग है। इस पर एक कोमल, ख़ामोश रवैया नहीं बल्कि सोची-समझी रणनीति ईजाद की जानी चाहिए जिससे दोषी व्यक्ति ऐसी शर्मनाक हरकत दोबारा करने की हिम्मत न कर सके।

जुही जैन *नारीवादी कार्यकर्ता व लेखिका हैं।*

सुनीला अभयसेकरा

श्रीलंका के मानव अधिकार और शान्ति बहाली के आंदोलन से जुड़ी एक अंतर्राष्ट्रीय नारीवादी कार्यकर्ता, अकादमिक व लेखिका।

शाहजहां आपा

दहेज हत्या व महिलाओं के साथ हिंसा पर एक लम्बे दौर की मुहिम से जमीनी स्तर पर जुड़ी एक अनोखी शख़्सियत।

बेटू सिंह (अनंदिता सिंह)

पिछले कई दशकों से संगिनी ट्रस्ट के तहत समलैंगिक और पारलिंगी महिलाओं के अधिकारों और समाज में उनके प्रति भेदभाव और हिंसा खत्म करने के प्रयासों से जुड़ी रही हैं।

शारदा बहन

एक्शन इंडिया के साथ महिला हिंसा, बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य, महिला पंचायत के मुद्दों पर काम करने वाली एक जुझारू कार्यकर्ता।

विनोद रैना

अग्रणी शिक्षाविद् और भारत ज्ञान-विज्ञान समिति और एकलव्य के माध्यम से शिक्षा के अधिकार पर सतत रूप से काम करने वाले कार्यकर्ता और अकादमिक।

अदम्य साहस और निष्ठा के साथ महिला आंदोलन में ज़मीन के संघर्षों से जुड़ी इन कर्मठ कार्यकर्ताओं को हम सबला की ओर से सलाम और श्रद्धांजलि।

इस जबरन लिख दिए गए को ही

पवन करण

घर चाहता है इस बारे में किसी से
कुछ नहीं कहा जाए
जहां तक सम्भव हो अपने आपसे भी
नहीं किया जाए इसका ज़िक्र!

इस सम्बन्ध में कुछ कहने से
कुछ नहीं होने वाला इससे तो बेहतर है
स्लेट पर इस जबरन लिख दिए गए को ही
मिटाने की जाए कोशिश।

इससे अच्छा और क्या होगा
इसने इस बारे में अब तक किसी को
कुछ नहीं बताया चुपचाप चली आई
किसी ने देखा भी नहीं कुछ होते।

किसी को कुछ पता ही नहीं चलेगा
तब काहे का बलात्कार?
कैसा बलात्कार??
धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा
देह से मिट जाएंगे खरोचों के निशान
आंखों से लगातार ओझल
होता चला जाएगा वह कामान्ध चेहरा।

घर चाहता है वह अपना घाव
किसी को नहीं दिखाए
पोंछ ले अपनी आंखें अच्छी तरह धो ले योनि
कुछ दिन नहीं निकले घर से
रही बलात्कारी की बात
उसे दंड देने के लिए ईश्वर है न!

काजल

अनामिका

मैंने नानी को कहीं देखा,
पर मुझको कुछ लोग ऐसे मिले कि
याद आ गई नानी!
नानी मेरी बड़े उद्योग से
काजल पारा करती थी!
सातों सन्तानों की सात तरह की आंखें
और एक चन्दा मामा का ढिठौना –
नज़र-गुज़र से तो बचाना था!
और खुली रखनी थीं
मौत की थपकी पर
झिपी चली जाती अपनी आंखें!

एक बड़ा मोखा था घर में
जिसमें अरण्डी का तेल डालकर
आयोजनपूर्वक जलाया जाता था दीया,
दीये की लौ पर उलटकर
ऐसे अन्दाज़ से टिकाया जाता था
कजरौटा
कि दोनों का काम चलता रहे –
न धुआं छितराए, न दीया बुझे!

फिर जौ-बराबर फिटकिरी
गरम तवे पर डाली जाती थी
और रोने की तैयारी में जैसे
मुंह बिदोड़ लेते हैं बच्चे,
गरम तवे पर बैठते ही
फिटकिरी पेट फुला लेती थी;
भर जाती थी उसमें गरम हवा!
यह मजेदार दृश्य होता था

बुरक-बुरकर वह उसके बाद
भंगरैया के रस में घोली जाती थी,
यह रस तब पसिनाई कालिख को
रुई के फाहे में डुबा-डुबाकर
ऐसे पिलाया जाता था
जैसे कि दूध
खरगोश के बच्चे को –
खरगोश-मां के मर जाने के बाद!

देखो तो मुझको –
रहती हूं काजल की ही कोठरी में,
पर काजल पारना नहीं जानती!
आंखों में बसकर मैं भी काजल हो जाती,
माथे पर चढ़कर ढिठौना –
नहीं बनी, नहीं चढ़ी-नहीं सही,
खुश हूं मैं मोखे की दीवारों पर भी,
जानती हूं इतना –
काल की दीठ में
काजल की धार-सी सजूंगी मैं
कभी-न-कभी!

लेख

सहमति से यौन संबंध बनाने की आयु सीमा बढ़ाने का फ़ैसला: एक समीक्षा

साहिल अरोड़ा तथा चितवन दीप सिंह

2012 की गर्मियों में संदीप पासवान पर एक अवयस्क लड़की को अगवा तथा उसका बलात्कार करने का आरोप लगा। यह बात अलग है कि वह अवयस्क लड़की क़ानूनन उसकी पत्नी थी, जिसके साथ वह पिछले एक साल से सहवास कर रहा था। हाल में पास हुए *यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण क़ानून* (आगे से सिर्फ़ क़ानून) की धाराओं के चलते पासवान पर अपनी ही पत्नी को अगवा करने और बलात्कार करने का आरोप लगा।

ऊपर बताया गया मामला इस क़ानून के अनेक परिणामों में से एक उदाहरण है। यह क़ानून बच्चों के साथ किसी भी प्रकार के यौन प्रवेश की कार्रवाई को अपराध मानता है। बच्चे से तात्पर्य, यहां 18 वर्ष से कम आयु के किसी भी व्यक्ति से है। ऐसे व्यक्ति की सहमति की कोई अहमियत नहीं है। 'पेनेट्रेशन' शब्द की परिभाषा का दायरा बढ़ाया गया है जिसके अन्तर्गत सिर्फ़ लिंग-योनि प्रवेश ही नहीं है बल्कि बच्चे के शरीर के किसी भी भाग में किसी भी प्रकार के प्रवेश को शामिल किया गया है। चाहे वह कोई वस्तु हो, हमलावर का कोई अंग हो या चाहे बच्चे से खुद अपने शरीर में किसी तरह का कोई प्रवेश कराया जाए। इस क़ानून के उद्देश्यों और कारणों के वक्तव्य के अनुसार इसका लक्ष्य बच्चों को तथा यौन अत्याचार व शोषण से उन्हें सुरक्षा दिलाने वाले क़ानूनी प्रावधानों को मज़बूत करना है। यह क़ानून इस प्रकार के अपराधों को जेंडर निरपेक्ष बनाता है। बच्चों के ख़िलाफ़ होने वाली अनेक शोषणकारी यौन कार्रवाइयों को पहली बार सज़ा के दायरे लाकर इसने पिछली क़ानूनी कमियों को दूर किया है। यह सब बताने के साथ-साथ यह भी मानना होगा कि वर्तमान सामाजिक ढर्रो पर यह क़ानून ध्यान देने में असफल रहा है जहां आज किशोरावस्था में यौन गतिविधियां धड़ल्ले से चल रही हैं। यह मुद्दा तब और भी अहम हो जाता है जब किशोर/किशोरियों के बीच सहमति से संभोग ही नहीं किसी भी प्रकार की प्रवेशात्मक यौन गतिविधि पर सज़ा का प्रावधान है।

लेखकों की राय में इस तरह का प्रावधान क़ानून लागू करने वाली एजेन्सियों द्वारा बच्चों को परेशान किए जाने का रास्ता खोल देगा। इस क़ानून में उन मामलों में नरमी बरतने के लिए भी कोई जगह नहीं है जहां दोनों भागीदारों की उम्र और परिपक्वता में अंतर बहुत कम होता है। उदार समाजों में संवैधानिक बलात्कार के लिए जगह बनाते हुए इस तरह की शर्तें रखना बड़ी तेज़ी से आम बात हो रही हैं।

हालांकि इस क़ानून के प्रावधानों का उद्देश्य बच्चों और यौन अत्याचार से उनकी सुरक्षा के क़ानूनों को मज़बूत करना है परंतु लेखकों की राय में इसका इस्तेमाल उन्हें नाजायज़ रूप से तंग करने के लिए किया जा सकता है। लेखकों की मांग है कि क़ानूनी प्रावधानों में सहमति से होने वाली यौन गतिविधियों की उम्र पुराने स्तर यानी 16 वर्ष कर दी जानी चाहिए। उनका तर्क है कि यह क़दम बाल अधिकारों के पक्ष में होने के साथ-साथ इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय चलन के अनुकूल भी होगा।

पृष्ठभूमि के मुद्दे

ऊपर बताए गए बदलाव का हम गहराई से विश्लेषण करें, उससे पहले ज़रूरी है कि बच्चों के यौन शोषण की पृष्ठभूमि को समझ लें जो आज हमारे देश में रोज़मर्रा हो रहा है और जिसके कारण यह क़ानून लाना पड़ा।

महिला व बाल कल्याण मंत्रालय की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार साक्षात्कार किए गए कुल बच्चों में से 53% ने बताया कि उन्हें किसी न किसी तरह के यौन दुर्व्यवहार का सामना करना पड़ा है और आश्चर्य नहीं है कि उसे करने वाले प्रायः घर के सदस्य, नौकर, टीचर या बच्चे के अन्य जानकार ही होते हैं। 5 से 12 साल की आयु के बच्चों के साथ यह सबसे अधिक होता देखा गया है। उस पर हाल यह है कि हमारी भारतीय दंड संहिता की धाराएं यौन अपराधों के विभिन्न रूपों से निपटने में सक्षम नहीं हैं।

जो धाराएं मौजूदा है वे भी प्रायः लड़कियों के साथ होने वाले अपराधों तक सीमित हैं। लड़कों के लिए कोई प्रावधान नहीं हैं। लड़कियों के लिए भी मात्र एक श्रेणी है— बलात्कार, जिसकी परिभाषा के दायरे में सिर्फ़ योनि-लिंग संभोग शामिल है। अन्य किसी तरह की यौन ज़्यादती या अत्याचार को बलात्कार नहीं माना जाता। इन भयानक आंकड़ों और क़ानूनी लचरपन ने ज़रूरी कर दिया कि बच्चों के साथ होने वाले यौन अपराधों से निपटने के लिए एक अलग क़ानून बने।

क़ानून तथा उसके प्रावधान

यह भारत का पहला ऐसा क़ानून है जो सिर्फ़ और सिर्फ़ बच्चों के साथ होने वाले यौन अत्याचारों के मुद्दों से निपटता है और उन पर होने वली बर्बरता को रोकने के लिए क़ानूनी प्रावधानों को मज़बूत करता है।

यह क़ानून 18 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को बच्चा मानता है और उन्हें यौन हमलों, यौन दुर्व्यवहार तथा बाल अश्लील व्यापार से सुरक्षा प्रदान करता है। इस क़ानून में पहली बार इन सभी अपराधों को परिभाषित करके उनकी गंभीरता के हिसाब से सज़ाएं तय की गई हैं। इसके तहत आने वाले अपराधों के लिए विशेष अदालतों का गठन करने और जहां तक हो सके एक साल के भीतर मामलों को निपटाने के निर्देश भी दिए गए हैं।

इसके अलावा ऐसे प्रावधान भी हैं जिनका उद्देश्य जांच और मुक़द्मे की प्रक्रिया को बाल मैत्रीपूर्ण और सहानुभूतिपूर्ण बनाना है। संचार माध्यमों में बच्चों की पहचान गुप्त रखना, पीड़ित को राहत व पुनर्वास सुविधाएं देना तथा ऐसे अधिकारियों की नियुक्ति करना जो इस क़ानून के सभी प्रावधानों के उचित कार्यान्वयन पर नज़र रखें।

पिछली क़ानूनी कमियों को दूर करने के साथ ही यह क़ानून तीन अन्य पक्षों में भी सफल रहा है।

पहला— यह जेंडर निष्पक्ष है यानी यह क़ानून मानता है कि यौन अत्याचार लड़कों के साथ भी होते हैं।

दूसरा— यह सबूत पेश करने की ज़िम्मेदारी मुल्ज़िम पर डालता है। इससे मुकद्में की कार्रवाई न्यायोचित होने और बच्चों को अतिरिक्त तकलीफ़ से बचाने में मदद मिलेगी।

तीसरा— यह क़ानून "छेड़छाड़" जैसी हल्की फुल्की और सतही शब्दावली को हटाकर, यौन हमला तथा प्रवेश सहित यौन हमला जैसे शब्दों का प्रयोग करता है और उनके बीच के फ़र्क़ को स्पष्ट करता है।

यह सही दिशा में पहला कदम है जो आगे और भी बेहतर प्रावधानों के लिए रास्ता खोलता है।

आश्चर्य नहीं कि संसद के निचले सदन ने इसे 'मील का पत्थर' क़ानून बताया है। इस सभी तारीफ़ के बीच यह भी कहना होगा कि इस बिल को जल्दबाज़ी में क़ानून बना दिया गया है जिसके कारण कुछ अहम मुद्दे नज़रअंदाज़ हो गए हैं।

क़ानून के साथ दिक्क़तें

यह क़ानून 18 वर्ष से कम उम्र के लोगों के बीच की गई सभी सहमतिपूर्ण यौन क्रियाओं का अपराधीकरण करता है। यानी यह क़ानून इस बेतुकी सोच के साथ चलता है कि भारत में किशोर आयु के बच्चे यौन रूप से सक्रिय नहीं है। और अगर वे कुछ करते हैं तो वह ग़लत और उनके लिए हानिकारक है।

यहां यह याद रखना होगा कि बिल का जो मसौदा बाल अधिकार संरक्षण आयोग को पेश किया गया था उसमें सहमति से संभोग की न्यूनतम आयु 16 वर्ष रखी गई थी। जिसे संसद की स्थायी समिति ने बढ़ा कर 18 वर्ष कर दिया। उनका तर्क था कि अन्य सभी क़ानूनों में 18 वर्ष से कम के व्यक्ति को बच्चा माना जाता है। *बाल अपचारी न्याय क़ानून 2006* का हवाला देते हुए कहा गया कि 18 वर्ष से कम उम्र के व्यक्ति को बच्चा मानने पर रज़ामंदी का मुद्दा बेमानी हो जाता है। 1990 के संयुक्त राष्ट्र संघ के *बाल अधिकार समझौते* (सीआरसी) के अनुकूल है, भारत जिसका सदस्य है।

देश के विद्वानों और क़ानूनविदों ने इन सभी दावों को सिरे से खारिज कर दिया है। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश कामिनी लाऊ ने इस क़ानून को "पिछड़ा और क्रूर" बताया है।

न्यायाधीश भट्ट का कहना है कि इस तरह के प्रावधान के चलते, लड़कियों के माता पिता की शिकायत पर बलात्कार के अपराध में अनेक लड़कों को बग़ैर यह जाने पकड़ लिया जाएगा कि लड़कियां रज़ामंद साथी थीं या नहीं।

दरअसल समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों ने ज़ोर दिया है कि हम इस सच को अनदेखा नहीं कर सकते कि 18 साल से कम उम्र के अनेक लड़के और लड़कियां यौन गतिविधियों में सक्रिय हैं।

बाल अधिकार संरक्षण आयोग की अध्यक्षा शांता सिन्हा के अनुसार "इस क़ानून के ग़लत इस्तेमाल की संभावनाएं बहुत अधिक हैं। हो सकता है कि 16-17 वर्ष के बच्चों में यौन जिज्ञासा हो और वे यौन संबंधों को जानना और अनुभव करना चाहें। यह क़ानून उन सबको अपराधी करार दे सकता है।" इस विशेष प्रावधान की तीन कमज़ोरियां गिनाई गई हैं।

सामाजिक सच्चाइयों की अनदेखी

इस क़ानून के साथ पहली बड़ी दिक्कत यही है कि यह भारतीय समाज की वर्तमान ज़मीनी हक़ीकतों को नज़रअंदाज़ करता है।

शहरी भारत में तेज़ी से बदल रहे मौजूदा रवैयों, सामाजिक संवेदनाओं के चलते चारों ओर एक बड़ा बदलाव दिखाई दे रहा है। आज किशोर बच्चों में यौन उत्सुकता बढ़ रही है, फलस्वरूप वे यौन रूप ज़्यादा सक्रिय हैं।

जनसंख्या अध्ययन के भारतीय संस्थान का कहना है कि विवाह पूर्व यौन संबंध स्वीकारने वाले 42% पुरुषों तथा 26% स्त्रियों ने माना कि उनमें से बड़ी संख्या में वे उस समय 18 वर्ष से कम आयु के थे। इसलिए ऐसे समाज में किशोरावस्था के यौन संबंधों का अपराधीकरण करना, जहां यह काफ़ी प्रचलन में है बेवजह हज़ारों लड़कों को बलात्कार के मुकद्मों में फंसा देगा।

यहां इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी है कि 16 से 18 वर्ष की उम्र ऐसी है जब बच्चों में अनेक हारमोन जनित बदलाव आते हैं। संभावना है कि जहां कहीं लड़के और लड़की के बीच झगड़ा होगा तो लड़की अपने साथी पर बलात्कार का आरोप लगा सकती है और उस अवयस्क लड़के के पास अपने बचाव का कोई क़ानूनी रास्ता नहीं होगा। हमारे क़ानून निर्माताओं ने इन अहम मुद्दों को अनदेखा कर दिया है। वे एक ऐसी प्रवृत्ति का अपराधीकरण कर रहे हैं जो सामान्य और बढ़ती उम्र के लड़के-लड़कियों के जीवन का आवश्यक भाग है। इस प्रकार से जो क़ानून निर्माता पुराणपंथी ऊंचे नैतिक मंच पर बैठ कर इस गतिविधि को गलत बता रहे हैं वे वास्तव में नैतिक चौकसी को बढ़ावा देकर युवाओं की प्रताड़ना में इज़ाफ़ा करेंगे।

इस प्रावधान के पीछे की मान्यता है कि ऐसे क़ानून से युवाओं को यौन गतिविधि से दूर रखने में मदद मिलेगी। लेकिन धरातल की सच्चाई इससे बिल्कुल उलट है। क़ानून के प्रति सीमित सम्मान और केबल व इन्टरनैट की उपलब्धता के कारण आज बच्चे कम उम्र में ही अपनी यौनिकता के प्रति सचेत हो रहे हैं और वे 18 वर्ष से पहले ही यौन संबंध बनाने से बिल्कुल नहीं झिझकते। इस देश के क़ानून निर्माता अपने नैतिक पूर्वाग्रहों के कारण यह नहीं समझ पा रहे हैं कि आज युवक-युवतियां यौन अनुभव पाने के लिए शादी होने तक का इंतज़ार नहीं करते। अतः क़ानूनी प्रावधान और सामाजिक सच्चाई के बीच संतुलन की कमी के चलते यह क़ानून ठीक से लागू नहीं हो पाएगा।

दरअसल संदीप पासवान मामले में न्यायपालिका ने कहा कि "बच्चों को सद्गुण और विवेक क़ानूनी प्रावधानों के ज़रिए नहीं सिखाया जाता। बेहतर होगा कि यह काम माता-पिता और अध्यापकों पर छोड़ दिया जाए। स्कूलों में बच्चों को यौन शिक्षा दी जानी चाहिए।"

घरेलू क़ानूनों के साथ तालमेल में नहीं

इस प्रावधान के साथ दूसरी अहम दिक्कत यह है कि भारत में आज भी बाल विवाह हो रहे हैं और यह प्रावधान इस तथ्य की अनदेखी करता है। विश्व के बच्चों की स्थिति पर यूनिसैफ़ की रिपोर्ट बताती है कि भारत के 18 वर्ष से कम उम्र के 47% बच्चे शादीशुदा है और उनमें से 26% यौन गतिविधि से जुड़े हैं।

हालांकि *बाल विवाह निषेध क़ानून 2006*, 18 वर्ष से कम आयु की लड़की और 21 वर्ष से कम आयु के लड़के के विवाह की आज्ञा नहीं देता लेकिन वह ऐसी शादियों को रद्द भी नहीं मानता जब तक कि लड़का या लड़की खुद ऐसा न चाहें। इस प्रकार से बाल विवाह क़ानून तथा इस क़ानून के प्रावधान एक दूसरे के विरोधी है। एक तरफ़ बाल विवाह क़ानून बच्चों की हो चुकी शादियों का बर्दाश्त करता है दूसरी तरफ यह क़ानून उनके बीच शारीरिक संबंध को अपराध कहता है। यानी दो अवयस्क लोगों के बीच शादी हो सकती है, वे साथ रह सकते हैं लेकिन संभोग नहीं कर सकते।

संसद की स्थाई समिति बिल के स्तर पर इस विरोधाभास को दूर कर सकती थी।

यहां एक और क़ानूनी पेंच भी है जो रज़ामंदी की उम्र के प्रावधान के विरोध में है। वह है *भारतीय दंड संहिता,* जिसके खंड़ 375 में कहा गया है कि 15 वर्ष से अधिक की विवाहित लड़की के साथ पति द्वारा किया गया संभोग, बलात्कार नहीं कहा जा सकता। यहां तो पत्नी की रज़ामंदी की बात भी नहीं उठाई गई है। जबकि 15 वर्ष से अधिक की विवाहित लड़की जो 18 वर्ष से कम है इस क़ानून के तहत बच्ची है। जिसके साथ संभोग अपराध है।

बड़ी हास्यास्पद स्थिति है कि *भारतीय दंड संहिता* जिस बात की छूट देती है, यह क़ानून उसी को अपराध मानता है। अतः यदि रज़ामंदी की उम्र को घटा कर 16 नहीं भी किया जाता तब भी 18 से कम और 16 से ऊपर के विवाहित जोड़ों के लिए अवश्य संशोधन लाना पड़ेगा। तभी यह क़ानून, *बाल विवाह निषेध क़ानून* तथा *भारतीय दंड संहिता* के खंड 375 के तालमेल में होगा और विवाहित अवयस्क बच्चे क़ानून की प्रताड़ना और अन्याय से बच पाएंगे।

अन्तर्राष्ट्रीय समझौते की अनिवार्यता नहीं

इस क़ानून में बच्चे की परिभाषा की सफ़ाई के तौर पर तर्क दिया जाता है कि सीआरसी के तहत उनकी परिभाषा (18 वर्ष से कम) को स्वीकारना अनिवार्यता है।

हालांकि इस समझौते की शर्तों का विश्लेषण करने से पता लगता है कि बच्चा शब्द की परिभाषा का सिर्फ़ सुझाव दिया गया है तथा इसका यौन संबंध की उम्र से कोई ताल्लुक नहीं है।

इसके अलावा कई और देश भी सीआरसी के सदस्य हैं जिन्होंने अपने यहां रज़ामंदी से यौन संबंधों की उम्र 18 वर्ष से कम रखी है। आज विश्व में रज़ामंदी की औसत उम्र 16 वर्ष है। कुछ देशों में तो यह 13 से 16 वर्ष के बीच है। जिन देशों में यह 18 वर्ष है वे प्रायः पिछड़े हुए और पुराणपंथी देश हैं। क्या हम उनकी संगत में रहना चाहेंगे? सबसे फ़िक्र की बात तो यह है कि उच्चतम न्यायालय के सेवा निवृत्त न्यायाधीश के नेतृत्व वाली विधि समिति द्वारा, हाल के वर्षों में दो बार रज़ामंदी की उम्र बढ़ाने के सुझाव को ख़ारिज करने के बावजूद हमारे क़ानून बनाने वाले ऐसा प्रस्ताव लाए हैं।

सन 2000 में न्यायमूर्ति बी पी रेड्डी ने बलात्कार क़ानून का पुनरीक्षण करते हुए कहा था कि रज़ामंदी की मौजूदा उम्र (यानी 16 वर्ष) जारी रहनी चाहिए। सन 2008 में *बाल विवाह निषेध क़ानून* में संशोधन का प्रस्ताव देते समय न्यायमूर्ति ए आर लक्ष्मणन ने भी इसी उम्र को बनाए रखने पर ज़ोर दिया था।

सारांश

यह सही है कि यह क़ानून बाल यौन अत्याचार की समस्या से निपटने का एक असरदार ज़रिया है और भारतीय क़ानून व्यवस्था की कुछ कमियों को भी दूर करता है। परंतु यह "बुरे प्रावधानों वाला अच्छा क़ानून" का उदाहरण बन गया है। रज़ामंदी की उम्र बढ़ाने के साथ यह क़ानून बेवजह, बेतुकी शिकायतों को बढ़ावा देगा। यह कोई समाधान देने के स्थान पर पुलिस द्वारा अवयस्कों को तंग किए जाने का ज़रिए बन जाएगा। क़ानून बनाने वालों को समझना होगा कि आज अवयस्क युवा आपसी सहमति से यौन संबंध जोड़ रहे हैं। उन्हें सींखचों के पीछे डालना बच्चों पर अत्याचार है और जिसे रोकने के लिए ही यह क़ानून बना है। विधि निर्माताओं को यह समझना होगा कि हमें सज़ा देने के एक उपाय की ज़रूरत नहीं है बल्कि एक ऐसा क़ानून चाहिए जो बाल अत्याचारों के लिए मुजरिमों को सज़ा देने और बच्चों की यौन स्वायत्तता सुरक्षित रखने के बीच संतुलन के साथ कारगर हो।

इसका एक तरीका यह है कि उम्र के कम अंतर वाले दो लोगों के बीच रज़ामदी से हुए यौन संबंध पर सज़ा न दी जाए। साथ ही स्कूलों में बच्चों को यौन शिक्षा दिए जाने की अहम ज़रूरतों की दिशा में काम हो ताकि वे न सिर्फ़ ख़तरों से आगाह रहें बल्कि यौन संबंधों के बारे में जो भी फ़ैसला करें वह सोच समझकर, पूरी जानकारी के साथ हो।

इस संदर्भ में माता-पिता की भी अहम भूमिका है। उन्हें यह समझना चाहिए कि हमारी संस्कृति अटल और अखंड नहीं है। वह समय के साथ बदलती है और बदलनी चाहिए।

लेखकों का दृढ़ विश्वास है कि सिर्फ़ इस प्रावधान में संशोधन लाकर बाकी प्रावधानों को जस का तस रखते हुए यह क़ानून समस्या से निपटने में बहुत मद्दगार होगा।

अतं में प्रो. कॉनराड के वक्तव्य "सबसे अच्छा क़ानून वह होता है जो भविष्य की असंगतियों से प्रभावी ढंग से निपट सके" का इस्तेमाल करते हुए कह सकते हैं कि क़ानून बनाने वालों का समझना चाहिए कि उनका फ़र्ज़ भविष्य की असंगतियों से निपटने वाला क़ानून बनाना है न कि वर्तमान में असंगतियां पैदा करने वाला।

साभारः मानुषी

कहानी

दावणी*

बामा

"मैंने इससे बार-बार कहा था कि हमारी बेटी को इतनी दूर मत भेजो। पर इसने सुना नहीं। अब हम दुनिया के दोनों सबसे ज़्यादा दुखी प्राणी, ज़िन्दा होते हुए भी अपनी जाई बेटी की सूरत नहीं देख सकते।" बार-बार यह बात दोहराते हुए दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी अरुलई।

उसे इस तरह अपना सिर व छाती पीटकर रोते देख कर आई हुई औरतें उसे तसल्ली देने की कोशिश करने लगीं, परन्तु अरुलाई को चैन ही नहीं आ रहा था। घर के बाहर बरामदे में उसका पति इरुलप्पन भी लुटा-पिटा सा बैठा हुआ था।

वहां पर जमा भीड़ को देख कर ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने कोई भूत देख लिया हो, किसी की भी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या कहें या क्या करें।

"किसी ने ऐसे ही नहीं कहा कि पैसे में पाताल को भी हिलाने की ताकत होती है। उसके पास बहुत पैसा है, वह सब कुछ दबा सकता है।"

जब इरूलप्पन के पिता ने यह कहा तो अरूलाई का भाई कलीअप्पन गुस्से से चीखा "तो वह पूरा कद्दू चावल के ढेर में छुपा सकता है और हम यहां बैठ कर बस तमाशा देखते रहेंगे।"

कलीअप्पन की उम्र बीस-पच्चीस वर्ष की होगी। जब से उसने सुना कि उसकी बहन की बेटी चेल्लाकिल्ली की अचानक मौत हो गई है तब से वह पागल सा घूम रहा था, हर वक्त कुछ न कुछ बड़बड़ता रहता। खबर मिलते ही उसने अपने बहनोई इरूलप्पन को साथ लिया और रात को ही कुप्पमपट्टनम के लिए रवाना हो गया। हालांकि उन लोगों ने बिलकुल भी वक्त ज़ाया नहीं किया था फिर भी उन्हें चेल्लाकिल्ली का मृत शरीर देखे बिना ही वापस लौटना पड़ा।

चेल्लाकिल्ली 11 साल की थी। उसका शरीर पूरी तरह से भर चुका था। अरूलई के सात बच्चों में से पहले चार मर गए थे और बचे तीन में से चेल्लाकिल्ली सबसे छोटी थी। इरूलप्पन और अरूलई जगन्नाथ नायक्कर के खेतों में काम करते थे। उनके पहले दो बेटे तीसरी कक्षा के आगे नहीं पढ़ सके थे। वो घर की दो भैंसों की देखभाल करते, घास काटते, खिलाते चराते और कभी-कभी मज़दूरी भी करते थे।

इरूलप्पन की बड़ी इच्छा थी कि उसकी बेटी पढ़ सके। उसने किसी तरह से अपने मन को समझाया कि काम के लिए वह अपनी बेटी को घर से दूर भेजेगा।

जब चेल्लाकिल्ली पांचवीं कक्षा में थी तो एक दिन ज़मींदार ने उससे पूछा "ऐ इरूलप्पा तुम्हारी बेटी क्या कर रही है आजकल?" "वह पांचवीं कक्षा में पढ़ रही है, सामी। इसीलिए मैं इतनी मेहनत कर रहा हूं। उसको आठवीं कक्षा तक ज़रूर पढ़ाना है चाहे इसके लिए मुझे कर्ज़ा क्यों न लेना पड़े" इरूलप्पन ने जवाब दिया।

"पोडा, पागल आदमी! आजकल आठवीं कक्षा तक पढ़ने का क्या फ़ायदा? कितने लड़के आठवीं तक पढ़ कर इधर-उधर बिना नौकरी के आवारागर्दी कर रहे हैं। अगर वह बारहवीं तक पढ़े तभी वह अध्यापिका की नौकरी के लिए अर्ज़ी दे सकती है।"

---

* *केरल में पहनी जाने वाली साड़ी।*

इरूलप्पन ज़मींदार के मिर्ची के पौधों में पानी दे रहा था, यह सुनकर सीधा खड़ा हो गया और अपने फावड़े का सहारा लेकर उसने हैरान होकर ज़मींदार की ओर देखा। "मैं तो उसे बहुत ऊंची तालीम देना चाहता हूं, सामी! परन्तु मेरे पास साधन नहीं है और हमारे गांव का स्कूल भी तो बस आठवीं कक्षा तक ही है।"

"मेरी बेटी कुप्पमपट्टनम में रहती है। उसने चिट्ठी भेजी है कि उसे घर के काम-काज में मदद करने के लिए एक लड़की की ज़रूरत है। अगर तुम हां कहो तो मैं तुम्हारी बेटी को उसके पास ले जाऊंगा। वो वहां रहेगी, खाएगी-पिएगी और जो थोड़ा बहुत काम होगा कर देगी। वहां पर एक बड़ा स्कूल है, उसे वहां पढ़ने दो। स्कूल जाने से पहले वह थोड़ा काम निपटा देगी और बाकी स्कूल से आने के बाद। वह मेरी बेटी की मदद करेगी, एवज़ में उसे कुछ पैसा भी हर महीने मिल जाएगा। क्या कहते हो?" उसने पूछा और जवाब का इंतज़ार करने लगा।

"मैं उसे पढ़ाई के लिए भेज भी दूं पर उसकी मां उसे नहीं जाने देगी, सामी! वह अपनी चेल्लाकिल्ली को खुद से अलग नहीं करेगी।"

"क्या कह रहे हो? जब भी तुम्हारा अपनी बेटी से मिलने का मन करे तो मुझे बता देना। मैं अपने खर्चे पर तुम दोनों को, उससे मिलाने ले जाऊंगा।"

ज़मींदार ने जब यह कहा तो इरूलप्पन की अपनी बेटी को लेकर महत्वाकांक्षा ने ज़ोर पकड़ा। वह यह सोचकर ही रोमांचित हो उठा कि उसकी बेटी अध्यापिका बनने के लिए पढ़ाई कर रही है।

"ठीक है, मैं अरूलई से इसके बारे में बात करूंगा और फिर आप को बताऊंगा, सामी" इरूलप्पन ने कहा और फिर पौधों में पानी देने लगा। सफ़ेद फूलों और लाल फलों से लदे पौधों को देखकर वह चेल्लाकिल्ली के इन पौधों की तरह खुशहाल जीवन की कल्पना करने लगा।

शाम को घर पहुंचते ही इरूलप्पन ने अरूलई को आवाज़ दी और ज़मींदार द्वारा कही गयी सारी बातें इस उम्मीद से दोहरा दीं कि वह उसके विचार से सहमत होगी।

"अगर तुम्हें अपनी लड़की से थोड़ा सा भी प्यार होता तो क्या तुम मुझसे यह बात पूछते? हमारी एक ही बेटी है और हमने उसे बड़े लाड़ प्यार से पाला है। हम उसे अपनी आंखों से दूर भेज कर कैसे जी सकते हैं? हमें उसके लिए ऐसी पढ़ाई नहीं चाहिए। उसे गांव में ही जितना पढ़ सकती है, पढ़ने दो, बस।"

परन्तु इरूलप्पन ने बात को वहीं खत्म नहीं किया। खाना खाते हुए भी वह इसी बात की चर्चा करता रहा। "मैं चेल्लाकिल्ली को ऐसे पाल रही हूं कि उसे एक छोटी सी चीज़ भी यहां से उठा कर वहां नहीं रखने देती। हमें जीवित रहने के लिए अपनी मासूम बच्ची से कहीं और जा कर घर का काम कराने की कोई ज़रूरत नहीं है। उसे हमारे साथ ही रहने दो, चाहे उसे पीने के लिए कुडू मिले या पानी! अरूलई की भड़ास सुन कर इरूलप्पन कुछ देर के लिए ख़ामोश हो गया।

"कुछ देर बाद पान खाते हुए उसने कहा, "एदा, थोड़ी देर के लिए ज़रा सोचो। क्या वह ज़िन्दा रहने के लिए कड़ी मजदूरी करने जा रही है? नहीं, वह स्कूल जाएगी और खाली होने पर घर के काम-काज में थोड़ी मदद कर दिया करेगी। और तो और हमारे ज़मींदार खुद उसे वहां ले जा रहे हैं। वह सारा इंतज़ाम कर देगें।"

इरूलप्पन ने अरूलई को समझाने की कितनी ही कोशिश की पर वह टस से मस नहीं हो रही थी। इसी वजह से दोनों के बीच रोज़ लड़ाई-झगड़ा होने लगा। आख़िर में ज़मींदार ने यह दिलासा दिया कि परीक्षा खत्म होते ही और छुट्टियां शुरू होते ही वह खुद चेल्लाकिल्ली को वापस ले आएगा, तो अरूलई ने आधे-अधूरे मन से हामी भर दी।

जैसे ही चेल्लाकिल्ली पांचवीं कक्षा पास कर छठवीं में पहुंची, इरूलप्पन ने स्कूल से उसका स्थानान्तरण पत्र लेकर ज़मींदार को दे दिया। चेल्लाकिल्ली पहली बार घर से दूर जा रही थी इरूलप्पन ने ज़मींदार से खास गुज़ारिश की कि वह उसके साथ जाने दें। परन्तु ज़मींदार ने उसे यह कह कर टाल दिया कि उसे अभी कटाई और बुवाई करनी है और चेल्लाकिल्ली को वह अकेले ही कुप्पमपट्टनम ले गया।

चेल्लाकिल्ली को काम करते हुए पूरे आठ महीने हो गए थे। इस पूरे समय में उसे एक बार भी वापस गांव नहीं लाया गया। जब भी ज़मींदार से पूछा जाता वह रूखाई से जवाब देता "क्या तुम्हारी बेटी गायब हो जाएगी? मैं अभी पिछले महीने ही वहां गया था, उससे मिला था। वह अच्छा खाना-पीना मिलने की वजह से मोटी हो गयी है। ज़्यादा काम भी नहीं है करने के लिए? तुम अपनी बेटी को अब देखोगे तो पहचान नहीं पाओगे।" यह कह कर वह अपने रास्ते चला गया।

"मैं सोच रहा था कि उसे कम से कम एक खत ही लिख दूं, इसलिए कृपा करके मुझे उसका पता दे दीजिए।" इरूलप्पन वह पता अपनी गली में रहने वाले एक पढ़े-लिखे व्यक्ति से पास ले गया और अपनी बेटी को एक चिट्ठी भेजी। उसने बहुत इंतज़ार किया, उसे भरोसा था कि उसकी बेटी जवाब लिखेगी पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ।

अरूलई उसके पीछे पड़ी रही कि वह उनकी बेटी से मिल कर आए। उसने घर खर्च में कटौती करके कुछ पैसे भी बचाए। "तुम कलीअप्पन को अपने साथ लेकर जाओ। ज़मींदार को बिना बताए यह पता ढूंढो और हमारी बच्ची से मिलो," बचाए हुए पैसे पति को थमाते हुए उसने कहा। साथ ही पोटली में चेल्लाकिल्ली के लिए भुने चावल और मूंगफली बांध दी।

इरूलप्पन जाने की तैयारी कर ही रहा था कि खबर आयी कि चेल्लाकिल्ली की अचानक मौत हो गई है। पहली बार ज़मींदार उनकी गली में खुद आया और इरूलप्पन के घर गया जिससे उसे बाहर बुला कर सारी बात साफ़ समझा सके। "फौरन चलो, कम से कम उसका चेहरा तो देख लें," उसने गमगीन होते हुए कहा।

ख़बर मिलते ही इरूलप्पन की आंखों के आगे अंधेरा छा गया। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि वह अपने आप को कैसे संभाले और घर जाकर अपनी पत्नी को क्या बताए।

आख़िर कलीअप्पन ने ही उसे धीरज बंधाया और उसे अपने साथ कुप्पमट्टनम जाने के लिए राज़ी किया। और वहां पहुंचते ही कलीअप्पन समझ गया कि आख़िर वहां क्या हुआ होगा।

ज़मींदार की बेटी के घर के आगे भारी भीड़ जमा थी। जब उसके पिता ने उसका परिचय इरूलप्पन और कलीअप्पन से करवाया तो वह अपनी साड़ी के कोने से आंखे पोंछने लगी जैसे कि रो रही हो।

इरूलप्पन और कलीअप्पन के मुंह से एक शब्द भी न निकला। दुख में डूबे हुए वे सिर्फ़ बैठ कर खाली आंखों से उसकी ओर देखते रहे। ज़मींदार की बेटी ने कहा "कल इस समय वह बेचारी ज़िन्दा थी। मुझे क्या पता था कि बेचारी यूं अचानक मर जाएगी? वह बच्ची जो कुछ देर पहले बैठकर पढ़ रही थी अचानक अपने हाथ-पैर यहां वहां पटकने लगी और चक्कर खाकर गिर गई। मुंह से झाग निकलने लगे। मैं सकते में आ गयी और जैसे जम सी गयी। टैक्सी बुलाई और उसे फौरन शहर के अस्पताल ले गई जहां उसे चार-पांच ग्लूकोस की बोतलें चढ़ाई गईं। एक इन्जेक्शन की कीमत चार सौ रुपये थी परन्तु मैंने पैसे की परवाह नहीं की। उसने दो इन्जेक्शन लगे परन्तु इसके बावजूद उसकी जान नहीं बचाई जा सकी। मैं और क्या कर सकती थी" कहते हुए उसने अपनी आंखों से आंसू पोंछे।

डॉक्टर ने हमें फौरन उसे दफ़नाने की हिदायत दी। मैंने बहुत मिन्नतें कीं कि हम उसके मां-बाप का इंतज़ार करें परन्तु उन्होंने कहा कि लाश वहां ज़्यादा देर तक नहीं रखी जा सकती। अगर तुमने मुझे पहले बताया होता कि उसको ऐसी बीमारी है तो मैं उसे हरगिज़ काम नहीं करने देती। तुमने उसे यहां छोड़ दिया, मुझसे सब कुछ छुपाया। उसे तो मेरे ही घर में मरना था। इसके पहले कि बेटी की बात खत्म होती, ज़मींदार ने उठकर उसे सीने से लगा लिया।

ज़मींदार की बेटी के घर में रहने वाले चार-पांच किराएदार आगे आकर बोले, "जो होना था वह हो गया भाई। वह चाहे गांव में रहती या यहां अगर उसकी मौत आनी थी तो उसे कौन रोक सकता था? अब आप जो कर सकते हैं करें और इन लोगों को दया भाव के साथ विदा करें। यह कहते हुए उन्होंने माहौल को सहज बनाने की कोशिश की।

ज़मींदार ने इरूलप्पन को एक हज़ार रुपये देते हुए कहा, "कोई क्या कह सकता है? चाहे हम सालों साल रोएं पर जाने वाले क्या कभी लौट कर आते हैं? हौसला रखो। यह पैसे लो और गांव वापस लौट जाओ। दो दिन बाद मैं भी वापस आऊंगा।"

इरूलप्पन और कलीअप्पन ख़ामोश खड़े रहे। उन्होंने पैसे के तरफ नज़र तक न डाली। बोझिल कदमों से गांव की बस पकड़ने के लिए बस अड्डे की ओर चल दिए।

जैसे ही वे बस अड्डे पहुंचे उन्होंने चार-पांच लोगों से चेल्लाकिल्ली की मौत के बारे में बातें करते सुना जिसे सुन कर उनका खून जम गया।

"माना कि वे लोग रईस हैं पर यह कोई तरीका है कि किसी को घर में काम करने के लिए लाओ और फिर उसका खून कर दो। यह सारा खेल उस विधवा का है- उसने सब कुछ इतनी सफ़ाई से किया है कि सब कुछ हमेशा छुपा रहेगा।

"क्या हुआ अगर उसके पति की मृत्यु हो गयी है। क्या तुम जानते हो कि कितने आदमी उसने मुट्ठी में कर रखे हैं जो उसे सहारा देने के लिए तैयार हैं।"

"मैंने सुबह उस बच्ची को कपड़े धोते हुए देखा था दोपहर तीन बजे तक उस मनहूस औरत ने उसे मार दिया। पता नहीं बच्ची कौन से गांव की है? उस छिनाल विधवा ने उसे कैसे मारा?"

"उसे यहां पढ़ाई के बहाने लाया गया था। उससे दिन भर काम कराया जाता था। उस दस-बारह साल की बच्ची को सफ़ाई, खाना बनाना और सारे काम करने पड़ते थे। छोटी सी भी गलती होने पर उसके दोनों बेटे उसका घाघरा उठाकर, नितम्बों पर छड़ी से मारते थे। मेरी पत्नी ने मुझे यह बात बतायी थी।"

"कई बार उसके लड़के और उसके दोस्त उस बच्ची के साथ छेड़खानी करते थे। उनकी मां जानती थी, परन्तु वह सब कुछ अनदेखा कर देती थी। उस बच्ची को घर से बाहर कदम निकालने की इज़ाज़त नहीं थी।" पता नहीं उसे कैसे मारा, ज़हर पिलाकर या नशीली दवाई देकर।

"नहीं, नहीं। उसने बच्ची से कहा कि वह चावल का आटा पीसकर तीन बजे तक तैयार रखे और खुद शहर चली गई। काम खत्म करते-करते लड़की को चार बज गए। सुना है कि नाराज़ होकर उसे गर्दन पर एक लाठी से मारा गया था। गलत जगह पर चोट लगी और अगले ही पल लड़की ज़मीन पर पड़ी छटपटा रही थी। जब उसके मुंह से झाग निकलने लगे तब ये लोग घबरा गए और उसे डॉक्टर के पास ले गए, परन्तु उसने रास्ते में ही दम तोड़ दिया। इसीलिए उन लोगों ने वापस आकर फौरन लाश को जला दिया। बच्ची के अप्पा और मामा आए थे परन्तु वे उसका मुंह भी नहीं देख पाए। इन लोगों ने आसपास के जानकार लोगों को पैसे देकर चुप करा दिया। बच्ची का पिता एक सीधा-साधा आदमी है। बिना कुछ कहे चला गया।"

कलीअप्पन के लिए यह सब असहनीय हो रहा था। गुस्से और मजबूरी से उबलते हुए वह अपने बहनोई को वापस गांव ले आया। उससे कहा कि वह अरूलई को इन सब बातों के बारे में कुछ न बताए।

जब ज़मींदार लौटा तो कलीअप्पन इरूलप्पन को लेकर उसके घर पहुंचा। ज़मींदार को देखकर इरुलप्पन गुस्से के बजाय दुख में डूब गया। उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकला। बस कलीअप्पन गुस्से में चीखता रहा और आश्चर्य की बात यह हुई कि ज़मींदार दोनों को घर के अन्दर ले गया और फिर प्यार और सहानुभूति से उन्हें ढाढ़स बंधाने लगा।

कलीअप्पन को ज़मींदार की चाल समझ में आ गई। "हमें बेवकूफ बनाने की कोशिश मत करो।" "देखो कलीअप्पन! इतनी बेशरमी से झूठ मत बोलो कि उसकी हत्या की गई है। ये लो, यह उसके भाग्य में लिखा था और वो चली गई। लो यह रखो, इसमें दो हज़ार रुपये हैं।

यह सुनकर कलीअप्पन और भी आग बबूला हो गया। "क्या मतलब है तुम्हारा? क्या तुम्हारी नज़र में चेल्लाकिल्ली के जीवन की कीमत सिर्फ़ दो हज़ार रुपये है?" और वह ज़मींदार को मारने के लिए आगे की ओर लपका।

ज़मींदार ने आराम से जवाब दिया, "कलीअप्पन गुस्से में होश मत गंवाओ। तुम्हें पता है कि मेरी बेटी कितने प्यार से चेल्लाकिल्ली की देखभाल करती थी। उसने मुझसे यहां तक कहा था कि चेल्लाकिल्ली को पहनने के लिए दावणी देनी चाहिए। वह तो उसे दावणी पहनाकर छुट्टियों में गांव लाने की सोच रही थी। पर इससे पहले वह ऐसा कर पाती यह सब हो गया। यहां देखो, अगर तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं है तो यह वो दावणी है जो मेरी बेटी ने उसके लिए खरीदी थी। उसने चेल्लाकिल्ली के बाकी कपड़ों के साथ इस भी साथ रख दिया यह कहते हुए कि यह उसे हमेशा चेल्लाकिल्ली की याद दिलाएगी।" उसने कलीअप्पन को एक लाल रंग की दावणी दिखाई।

कलीअप्पन के क्रोध की कोई सीमा न रही। "तुमने कहा था कि तुम बच्ची को स्कूल भेजोगे परन्तु तुमने तो उसे शमशान पहुंचा दिया। और फिर भी तुम्हें यह बोलने की हिम्मत है। हमें पता है वहां क्या हुआ था। तुम और तुम्हारी दावणी।" कलीअप्पन ने गुस्से में दावणी एक तरफ फेंक दी और पैर पटकते हुए बाहर चला गया।

इरूलप्पन कुछ पल उस लाल दावणी को देखते हुए वहां खड़ा रहा। फिर जैसे उसने कुछ सोचा। फिर झुककर लाल दावणी उठा ली और वापस घर लौट गया।

अगली सुबह, ज़मींदार के घर के पिछवाड़े लाल दावणी से नीम के पेड़ पर एक लाश लटकती हुई नज़र आई।

बामा, *दलित साहित्य की जानी-मानी लेखिका हैं।*
वे वर्ग और शोषण संबंधी मुद्दों पर कहानियां लिखती हैं।

साभारः हारम-स्कारम सार—विमेन अनलिमिटेड प्रकाशन,
अंग्रेज़ी से अनूदित।

आमने-सामने

सिर्फ़ क़ानून बनाना काफ़ी नहीं

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने

भारत में सभी बच्चों को यौन अपराधों से सुरक्षित करने वाले एक व्यापक क़ानून की जरूरत काफ़ी समय से अधर में लटकी हुई थी। जब पिछले नवम्बर माह में *यौन अपराध बाल सुरक्षा क़ानून 2012* (पॉक्सो) लागू हुआ तब भारतीय संसद द्वारा बाल अधिकारों की पूर्ति की दिशा में लिया गया यह एक अहम कदम था।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) बताता है कि भारत में बच्चों के साथ बलात्कारों की संख्या बढ़ी है। 2011 में रिपोर्ट किए गए 7112 मामलें 2012 में बढ़ कर 8541 हो गए। एनसीआरबी की नवीनतम रिपोर्ट में 'पॉक्सो' के तहत दर्ज मामलों के आंकड़े नहीं मिले लेकिन भारत सरकार के पिछले आंकड़े हमें इस समस्या के अनुपात का अंदाज़ा देते हैं। 2007 में सरकार ने लगभग 12,500 बच्चों का सर्वेक्षण किया था। जिनमें से 50% से अधिक बच्चों ने बताया कि उन्होंने किसी न किसी तरह का यौन दुर्व्यवहार झेला था। 20.9% बच्चों के साथ तो गुप्तागों को सहलाने या/अथवा उनके अपने गुप्तांगों का प्रदर्शन करने के लिए मजबूर करने सहित गंभीर यौन उत्पीड़न किया गया था।

भारत में यौन प्रताड़ित बच्चों में से 5% ने बताया कि उनकी नग्न तस्वीरें भी खींची गईं। बाल अश्लीलता व्यापार के शिकार बच्चों में 52.01% लड़के थे और 47.99% लड़कियां थीं। उनमें से लगभग 50% बच्चे 5 से 12 वर्ष की आयु के बीच थे और 24% 13 से 14 वर्ष के बीच।

'पॉक्सो' लागू होने से पहले वास्तविक बलात्कार के अलावा अन्य किसी प्रकार के यौन अपराधों के लिए पुलिस को *भारतीय दंड संहिता* में उचित धाराएं नहीं मिलती थीं सिवाए एक दो को छोड़ कर। वे भी वयस्कों और बच्चों के बीच अंतर नहीं करती थीं। अवयस्क लड़कों के साथ ग़ैर प्रवेशात्मक यौन उत्पीड़न के लिए कोई धारा या दफ़ा उपलब्ध ही नहीं थी।

'पॉक्सो' के तहत बच्चों के ख़िलाफ़ यौन अपराधों को चार श्रेणियों में बांटा गया है। (प्रवेश सहित यौन हमला, यौन हमला, यौन उत्पीड़न, बाल अश्लीलता व्यापार)

जब भरोसे या अधिकार के पद पर बैठे व्यक्ति द्वारा यौन हमला व प्रवेश सहित यौन हमला किया गया हो, जब बच्चा 12 वर्ष से कम उम्र का हो या अशक्त हो सामूहिक या निरन्तर होने वाला यौन हमला हो या जब ख़तरनाक हथियारों का इस्तेमाल किया गया हो या जहां कहीं ऐसे हमले के फलस्वरूप शरीर को अतिरिक्त नुकसान या चोट पहुंची हो तब उसे गंभीर मान कर कार्रवाई की जाती है। अपराध को तब भी गंभीर समझा जाता है जब उसके नतीजे में बच्चे को हानि या संक्रणम हो जाए तथा यदि उसे सार्वजनिक रूप से शर्मिन्दा किया गया हो।

इस क़ानून के तहत इन सभी अपराधों के लिए उचित दंड का प्रावधान है। प्रवेश सहित हमले के लिए कम से कम सात साल तथा प्रवेश सहित गंभीर हमले के लिए कम से कम 10 साल की सज़ा का प्रावधान है। एक अन्य प्रगतिशील क़दम यह है कि इस क़ानून के तहत दी गई सूची में से कोई अपराध करने की कोशिश को भी अपराध माना है और वास्तविक अपराध के लिए निश्चित सज़ा की आधी सज़ा दी जा सकती है।

जैसे ही पुलिस में शिकायत दर्ज कराई जाती है बच्चे को राहत देने और पुनर्वास के लिए पुलिस को बाध्य किया गया है

कि वह 24 घंटे के भीतर बच्चे को सुरक्षा दे व उसे नज़दीकी शैल्टर या अस्पताल में भर्ती कराए। पुलिस के लिए यह भी ज़रूरी है कि वह 24 घंटे के भीतर बच्चे के दूरगामी पुनर्वास के बारे में बाल कल्याण समिति (सीडब्ल्यूसी) को अपनी रिपोर्ट दे।

यहां एक अहम समस्या यह है कि *आपराधिक प्रक्रिया संहिता* की धारा 164 के तहत दंडाधिकारी के सामने पीड़ित का बयान तुरंत नहीं बल्कि 2-3 दिन बाद दर्ज कराया जाता है। वह बहुत महत्वपूर्ण समय होता है जब पीड़ित बालक/बालिका और उसके परिवार पर शिकायत वापिस लेने के लिए दबाव या धमकी का इस्तेमाल किया जा सकता है। यह बात ख़ासतौर पर उन मामलों पर ज़्यादा लागू होती देखी गई है जहां अपराधी, पीड़ित का जानकार होता है। धारा 164 के तहत बच्चे का बयान तुरंत दर्ज होना चाहिए तथा सबूत इकट्ठा करने की प्रक्रिया में भी सुधार की ज़रूरत है।

एक व्यापक पीड़ित सुरक्षा योजना की बहुत ज़्यादा आवश्यकता थी जो 'पॉक्सो' में शामिल नहीं की गई है, सिवाए कुछ सुधारों के और वे भी तब लागू होते हैं जब मामला अदालत में आ जाता है। क़ानून की इस कमज़ोरी के कारण कितने ही पीड़ित, अदालत में अपने बयान से पलट जाते हैं।

जैसे ही पुलिस के पास शिकायत की जाती है पीड़ित को तुरंत सुरक्षा दिए जाने की ज़रूरत होती है जो इस क़ानून के तहत नहीं है। परिणाम स्वरूप शिकायत दर्ज कराने के समय भी पीड़ित के पास न तो क़ानूनी सलाह देने वाला कोई होता है और न ही उसे मनोवैज्ञानिक सलाहकार या डॉक्टरी जांच की सुविधा मिलती है।

'पॉक्सो' में अपराध की रिपोर्ट को आवश्यक बताया गया है तथा चूक होने पर सज़ा का प्रावधान भी है। यह क़ानून कहता है कि बच्चे द्वारा यौन अपराध की शिकायत करने पर यदि कोई पुलिस वाला दर्ज नहीं करता तो उसे छः माह तक की सज़ा दी जा सकती है। इसके बावजूद ऐसे उदाहरण है जहां पुलिस रिपोर्ट दर्ज करने में आनाकानी करती है या हल्की व ज़मानती धाराओं के तहत मामला दर्ज करती है। इसलिए यहां सज़ा बढ़ाने की मांग की जाती रही है। हालांकि यह कोई प्रभावकारी समाधान नहीं लगता।

इस क़ानून के एक और आयाम पर भी बात करने की ज़रूरत है। जैसे कि एक बार *हक़* की सह निदेशक भारती अली ने इशारा किया था कि रिपोर्ट लिखने की बाध्यता ने बहुत से मामले सामने लाने में मदद ज़रूर की है लेकिन अनुभवों से मालूम होता कि इस प्रावधान के बावजूद 'पॉक्सो' में दर्ज मामलों में पीड़ित अपना बयान बदल देते हैं और अपराधी को सज़ा नहीं मिलती। इसलिए जब तक पीड़ित मामला दर्ज कराने के लिए मानसिक रूप से तैयार न हो रिपोर्ट करने की बाध्यता से कोई ख़ास फ़ायदा नहीं होता। साथ ही ऐसे मामले जहां रज़ामंदी से लड़का और लड़की भाग जाते है, पुलिस उस लाचार लड़के पर 'पॉक्सो' लगा देती है।

पुलिस का बहाना यह है कि अवयस्कों से जुड़े मामले में अगर वे 'पॉक्सो का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो उन्हें और अधिक कठोर सज़ा मिल सकती है।

हालांकि सज़ा, न्याय व्यवस्था का एक अहम हिस्सा है लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि सज़ा ही "न्याय" है। जिस बच्चे ने यौन उत्पीड़न झेला है, हो सकता उस पर उसके काफ़ी गंभीर परिणाम हों जैसे शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएं, उसकी आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक प्रगति में बाधा आदि।

यौन उत्पीड़न के साथ प्रायः शारीरिक हिंसा जुड़ी होती है और जिन बच्चों का यौन शोषण होता है उन्हें एचआईवी/एड्स तथा यौन संक्रमण होने का ख़तरा अधिक होता है। शर्मिन्दगी, अपराध बोध, आत्मसम्मान की कमी ऐसी कुछ मनोवैज्ञानिक समस्याएं हैं जिनका सामना भी प्रायः उन्हें करना पड़ता है। हो सकता है कि कुछ बच्चे यौन उत्पीड़न के दर्द से निपटने के लिए आत्महत्या, नशीली दवाईयां व खुद को नुकसान पहुंचाने वाले अन्य तरीके अपना लें।

हक़ में हम लगातार ऐसे मामले देखते हैं जहां बच्चे स्कूल में अपने साथियों से या पड़ोस के बच्चों से इसलिए डरते हैं कि यदि उन्हें पता लग जाएगा तो वे उनका मज़ाक उड़ाएंगे। भारत में जेंडर संबंधी कड़े नियमों, तौर-तरीकों और मर्दानगी की झूठी धारणा के कारण यौन उत्पीड़न के शिकार बच्चों के लिए शारीरिक और मनोवैज्ञानिक परिणाम और भी गंभीर हो सकते हैं। जो लड़के इन अपराधों की रिपोर्ट करते हैं उन्हें कमज़ोर समझा जाता है और लड़कियों के मामले में शायद उन्हें ही इसके लिए दोष दिया जाए। यौन शोषण के शिकार बच्चों को सलाहकारी सहायता देने के हक़ के अुनभवों ने हमें सिखाया है बच्चे चाहते हैं कि अपराधी सीख़चों के पीछे जाए लेकिन उनके पुनर्वास के लिए इससे कहीं अधिक की ज़रूरत होती है। बच्चों को राहत देने की प्रक्रिया में 'पॉक्सो' की कमियां सामने आईं। पीड़ित और उसके परिवार के लिए योग्य

परामर्शदाताओं और मनोचिकित्सकों की सेवाएं मुहैय्या कराने में यह क़ानून सफल नहीं रहा है।

पहली बात तो यह कि बच्चों के मनोचिकित्सकों की सेवाएं बहुत मंहगी हैं और सरकार ने ऐसे सलाहकारों का कोई समूह गठित नहीं किया है जहां बच्चों को भेजा जा सके।

दूसरी बात यह है कि अधिकांश परिवार ऐसे सलाहकारों के पास नियमित रूप से आने-जाने का ख़र्चा भी नहीं उठा सकते हैं। सलाहकार के पास समय बिताने का अर्थ होगा उस दिन की मज़दूरी का हरज़ाना।

'पॉक्सो' राज्य और केंद्र सरकार पर यह ज़िम्मेदारी डालती है कि वे समय समय पर सामान्य जनता बच्चों, उनके माता-पिता और अभिभावकों को इस क़ानून के प्रावधानों के बारे में जागरूक करें, जिसके लिए वे रेडियो, टेलीविजन और समाचार पत्र-पत्रिकाओं का इस्तेमाल कर सकते हैं। हमारा विचार है कि यौन हिंसा की समस्या के लिए इससे भी ज़्यादा सम्पूर्णात्मक कोशिशों की ज़रूरत है। *हक़* के काम के दौरान हमारा लगातार समाज की कठोर सच्चाइयों से सामना होता है। हमने पाया है कि यौन अपराध को एक सीमा से अधिक अहमियत नहीं दी जाती। रोज़मर्रा के अनुभव बताते हैं कि जब तक सलाहकार सेवाएं सस्ती और आवश्यक नहीं बनाई जाती, अपराधों के प्रभावों से निपटना और उबर कर बाहर आ पाना एक सपना ही रहेगा। सामाजिक कार्यकर्ता उतनी अच्छी तरह प्रशिक्षित नहीं होते फिर भी अनेक बार उन्हें मनोचिकित्सक भी बनना पड़ता है जबकि उनकी भूमिका बिल्कुल अलग होती है। इस प्रकार के काम के लिए लोगों से आर्थिक मदद भी कम ही मिलती है क्योंकि कुछ भी देने से पहले वे केस के बारे में सब कुछ जानता चाहते हैं। सच तो यह है कि अधिकांश लोग पीड़ित से खुद मिलना चाहते हैं। यह पीड़ित और उसके परिवार के आत्मसम्मान और गरिमा के ख़िलाफ़ है। बच्चों की सुरक्षा के लिए सरकार से मिलने वाले संसाधन साल दर साल घट रह हैं। बच्चे और उनके परिवार अपने आपको एक अव्यवस्थित व्यवस्था के बीच फंसा पाते हैं। वे प्रायः किसी न किसी ग़ैर सरकारी संस्था, किसी सहृदय वकील या क़ानूनी सहायता सेवा के या किसी संवेदनशील पुलिस अधिकारी के रहमो करम पर रहते हैं। आमतौर पर इसका विकल्प उन्हें कहीं ज़्यादा आसान दिखता है- कोशिश छोड़ देना।

मारिया रोज़ारियो-चेनत्रोने, *हक़-बाल अधिकार सेंटर से जुड़ी हैं।*

कविता

टूटी-बिखरी और पिटी हुई

(शमशेर से क्षमायाचना सहित)

अनामिका

पीठ नीली,
चेहरा पीला,
लाल आंखें और
ज़ख्म हरे—
कुदरत के सब रंगों की बोतल

उलट-पलट जाती है मुझ पर
उनके आते ही!
इसको ही कहते हैं क्या—
हींग लगे, न फिटकिरी
और रंग चोखा?

आमने-सामने

बच्चों की सुरक्षा, हम सबकी ज़िम्मेदारी

किशोर झा

दिल्ली में पांच साल की बच्ची के साथ हुए बलात्कार की घटना के बाद पूरा देश स्तब्ध दिखाई पड़ रहा था, पर इस घटना के विरोध में उभरा गुस्सा धीरे-धीरे शांत होता दिखाई दे रहा है। दिल्ली की सड़कों पर उतरे लोग भी अपने-अपने घरों और दफ़्तरों में जा पहुंचे हैं और अख़बारों की सुर्ख़ियों में अब दूसरी ख़बरें हैं। बच्चों की सुरक्षा का सवाल एक बार फिर हाशिए पर जाता दिख रहा है।

किसी भी तरह की हिंसा से सुरक्षा हर बच्चे का मूलभूत अधिकार है पर इस घटना ने एक बार फिर से यह साबित कर दिया है कि हम अपने बच्चों को सुरक्षित रखने में नाकाम रहे हैं। इस वीभत्स मामले की बारीकियों ने मीडिया और जनता दोनों का बच्चों के साथ होने वाली हिंसा की तरफ ध्यान खींचा और लोगों की प्रतिक्रिया से ऐसा लग रहा था कि ये कोई अनोखा और इकलौता मामला हो। पर वास्तविकता यह है कि गुड़िया जैसे बहुत से बच्चे और बच्चियां हैं जो आये दिन यौन शोषण का शिकार होते हैं पर उनकी कहानियां सामने आ ही नहीं पाती। खुद *महिला एवं बाल विकास मंत्रालय* द्वारा किये गए सर्वे के अनुसार 53% बच्चों को यौन हिंसा का सामना करना पड़ता है। मासूम बच्चे यौन हिंसा के सबसे आसान शिकार हैं और अपराधी भी इस बात को भली भांति जानते हैं कि बच्चे इस हिंसा का विरोध करने में सक्षम नहीं हैं। आख़िर क्या कारण है कि तमाम क़ानूनों और व्यवस्थाओं के बावजूद हम बच्चों की हिफाज़त करने में नाकामयाब रहें हैं?

इस नाकामयाबी के लिए कई कारक ज़िम्मेवार हैं पर उन सबमें सबसे महत्वपूर्ण पुलिस का रवैया है। ऐसे मामलों में पुलिस का प्रयास रहता है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज ही न की जाए। उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के कितने ही ऐसे आदेश हैं जिनमें कहा गया है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट बिना देर किये दर्ज की जानी चाहिए। रिपोर्ट दर्ज करने से इन्कार करना सीधा न्यायालय की अवमानना है पर ऐसे पुलिस अधिकारियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की जाती। अगर गुड़िया मामले को *यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण क़ानून 2012* के दायरे में आंका जाए तो हम पाएंगे कि पुलिस ने तीन दिन तक गुड़िया की गुमशुदगी की रिपोर्ट तक दर्ज नहीं की और न ही अपनी जांच-पड़ताल शुरु की। अगर पुलिस ने सही समय पर कार्रवाई की होती तो हो सकता है कि गुड़िया इस वीभत्स अपराध से बच सकती थी। यौन अपराधों से बच्चों का संरक्षण के तहत अवहेलना करने पर छह माह के लिए सज़ा का प्रावधान है इसलिए ऐसे सभी पुलिसकर्मियों पर उक्त धारा के अंतर्गत केस दर्ज किया जाना चाहिए जिन्होंने दुराचार की शिकायत मिलने के बावजूद तत्काल कार्रवाई नहीं की।

नेशनल क्राइम ब्यूरो के अनुसार हिन्दुस्तान में हर आठ मिनट में एक बच्चा लापता होता है। पर हम 40% बच्चों को भी ढूंढने में कामयाब नहीं होते। गैर सरकारी संगठनों द्वारा लगभग 400 ज़िलों में किये गए सर्वे के अनुसार 2008 और 2010 के बीच लगभग 1,20,000 बच्चे लापता हुए। गृह मंत्रालय द्वारा शुरु की गई 'ज़िपनेट' सेवा में लापता बच्चों की सूचना दर्ज की जाती है। पुलिस समझती है कि वेबसाइट में सूचना दर्ज करने के बाद उनका काम खत्म हो गया और बच्चे को खोजने का काम भगवान भरोसे छोड़ दिया जाता है।

बाल यौन दुराचार के मामलों में ज़रूरी है कि जांच करने वाली अधिकारी महिला हो और उन्हें पीड़ित बच्चों से पेश आने और ऐसे मामलों से निपटने के लिए प्रशिक्षित किया गया हो। पर कई मामलों में देखा गया है कि महिला जांच अधिकारी को ऐसे मामलों से निपटने के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। ऐसे मामलों में यह ज़रूरी है कि जल्द से जल्द रिपोर्ट दर्ज की जाए और सारे साक्ष्य समय पर इकट्ठे किये जाएं। पर अक्सर होता यह है कि अभियुक्त साक्ष्यों के अभाव में छूट जाते हैं, और जो गवाह महत्वपूर्ण साक्ष्य हो सकते हैं पुलिस द्वारा बनाई गई गवाहों की सूची से बाहर रखे जाते हैं।

कई मामलों में पीड़ित बच्चियों और उनके परिवार को सुरक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि ज़मानत पर छूटने के बाद आरोपी उन्हें धमकाते हैं। यह कोई ताज्जुब की बात नहीं है कि हमेशा गवाह, पीड़ित और उनके परिवार कमज़ोर पड़ जाते हैं क्योंकि उन्हें घटना के बाद कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती। अगर क़ानून की धारा 164 के तहत पीड़ित बच्चे या बच्ची का बयान दर्ज करने में देरी हो जाती है, उसे सुरक्षा प्रदान नहीं की जाती तो केस प्रभावित होता है। पीड़ित बच्चे को इस दौरान नकारात्मक प्रभावों से नहीं बचाया जाये तो लाज़िमी है कि उसका बयान प्रभावित होगा, ख़ासकर जब अभियुक्त परिवार का ही कोई व्यक्ति हो या बच्चे पर प्रभाव डालने कि क्षमता रखता हो।

न्यायालय का माहौल भी बच्चों के लिए अपरिचित होता है जो बच्चों के बयान देने और उनके साथ होने वाली सवाल जवाब की प्रक्रिया को नकारात्मक रूप में प्रभावित करता है। इस सन्दर्भ में न्यायाधीशों और न्यायालय से जुड़े लोगों के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि न्याय व्यवस्था को बच्चों के लिए संवेदनशील बनाया जा सके।

बाल यौन उत्पीड़न के मामलों में चिकित्सीय जांच बहुत महत्वपूर्ण है पर कारगर जांच के अभाव में ऐसे मामले कमज़ोर पड़ जाते हैं। अक्सर पीड़ित बच्चे को यह नहीं बताया जाता कि उसे किस तरह के परीक्षण के लिए ले जाया जा रहा है। बिना पर्याप्त जानकारी दिए उनसे सहमति पत्र पर हस्ताक्षर करा लिए जाते हैं। सरकारी अस्पतालों में होने वाले चिकित्सीय परीक्षणों में निजता के सभी मानदंडों को ताक पर रख दिया जाता है। कई बार पीड़ित व्यक्ति द्वारा बताई गयी बहुत सी महत्वपूर्ण सूचनाएं रिर्पोट में दर्ज ही नहीं की जाती। रिर्पोट में विधि विज्ञान जांच के लिए भेजे गए नमूनों और कपड़ों का ज़िक्र तक नहीं किया जाता।

दिल्ली में बच्चों और व्यस्कों दोनों के साथ होने वाले यौन हिंसा के मामलों में मदद के लिए संकट हस्तक्षेप केन्द्रों की व्यवस्था की गई है। पर इन केन्द्रों के पास बलात्कार के अलावा यौन हिंसा से जुड़े किसी अन्य मामलों पर कोई समझ नहीं होती। सहकर्मी भी तब आते हैं जब चिकित्सीय परीक्षण पूरा हो चुका होता है। इसलिए मामला दर्ज होने से लेकर परीक्षण होने तक पीड़ित बच्चे की मदद के लिए कोई नहीं होता।

समेकित बाल संरक्षण कार्यक्रम (आईसीपीएस) के अंतर्गत हर ज़िले में बाल सुरक्षा समितियां और हर थाने में विशेष किशोर पुलिस इकाइयों की व्यवस्था अनिवार्य है। पर देश के अधिकतर ज़िलों और थानों में या तो ये समितियां बनी ही नहीं है या उनका अस्तित्व सिर्फ़ कागज़ों तक ही सीमित है। किशोर कल्याण अधिकारी के पद के लिए अन्य अधिकारियों को अतिरिक्त भार दे दिया गया है और उनके पास बाल सुरक्षा के मामलों से निपटने के लिए समय ही नहीं है। इसी तरह इस इकाई में बच्चों की सहायता के लिए दो सामाजिक कार्यकर्ताओं की भी व्यवस्था है पर ज़्यादातर स्थानों पर वो नदारद हैं।

ज़िला स्तर पर बाल कल्याण समितियां और राज्य स्तर पर बाल सरंक्षण आयोगों की भी बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने में एक अहम् भूमिका है। पर देश के कई ज़िलों और राज्यों में ये संस्थाएं गठित ही नहीं हुई हैं। आज भी देश के चौदह राज्यों में बाल सुरक्षा आयोग और लगभग 250 ज़िलों में बाल कल्याण समितियों का गठन ही नहीं हुआ है। बहुत से ज़िलों में बाल कल्याण समितियां केवल कागज़ों पर है और ऐसे लोगों से भरी पड़ी है जिन्हें बाल अधिकारों से कोई वास्ता नहीं है।

बच्चों की सुरक्षा हम सबकी साझी ज़िम्मेदारी है। इसके लिए ज़रूरी है कि क़ानूनों का ठीक से पालन हो और क़ानून के क्रियान्वयन के तौर तरीके ऐसे हों कि पीड़ित बच्चों को और प्रताड़ना का सामना न करना पड़े। पुलिस और न्यायपालिका का रुख बच्चों के प्रति संवेदनशील हो और मामला दर्ज होने के साथ-साथ उन्हें और गवाहों को पर्याप्त सुरक्षा मुहैय्या कराई जा सके ताकि वे न्याय पाने से वंचित न हों।

जांच और न्यायिक प्रक्रिया, दोनों में ही मूलभूत सुधारों की ज़रूरत है। ऐसे ढांचागत एवं संस्थागत बदलावों की ज़रूरत है जिसमें बच्चों की देखभाल और सुरक्षा निहित हो सके। आंगनवाड़ी और स्कूलों से लेकर बाल गृहों तक बच्चों की सुरक्षा के इंतज़ाम हो और देखभाल और सुरक्षा के ये प्रावधान जे जे एक्ट के अनुसार हों। ऐसे सभी संस्थान, सरकारी या गैर सरकारी, जो बच्चों के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में काम करते हैं उनके पास बाल सुरक्षा नीति हो और उसका कारगर क्रियान्वयन हो। समाज के हर तबके और हिस्से को बाल सुरक्षा के प्रति जागरूक करने और प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि वो बच्चों की सुरक्षा के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभा सकें। ये भी ज़रूरी है कि बच्चों से इस विषय पर खुल कर बातचीत हो और उनका सशक्तिकरण हो ताकि वो अपनी सुरक्षा के लिए सचेत और सशक्त बनें। हाल में ही हुई घटनाओं के मद्देनज़र यह ज़रूरी है कि हम स्थिति का आंकलन करें और मिलकर इस तरह की घटनाओं को रोकने के लिए तुरंत सामूहिक कदम उठायें।

किशोर झा, *डेवलपमेंट प्रोफेशनल के रूप में टेरे डेस होम्स, जर्मनी में कार्यरत हैं और पिछले कई सालों से बाल अधिकारों के क्षेत्र में काम कर रहे हैं।*

अभियान

बच्चों की हिफ़ाज़त हम सबकी ज़िम्मेदारी

बच्चों के बारे में कुछ अहम बातें जो आपके लिए जानना ज़रूरी हैं:

महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा बच्चों के साथ होने वाले दुराचार पर करवाए गए अध्ययन के अनुसार:

- हर तीन में से दो बच्चों को मार-पिटाई जैसी शारीरिक हिंसा का सामना करना पड़ा है।
- 53.22% बच्चों को एक या अधिक तरह की यौन हिंसा का सामना करना पड़ा है।
- दुराचार करने वालों में से आधे लोग या तो बच्चों के परिचित थे या फिर जिन पर बच्चे भरोसा करते थे और इसी कारण अधिकतर बच्चों ने ये बातें किसी को नहीं बताईं।

हकीक़त

- मासूम बच्चे यौन-हिंसा के सबसे आसान शिकार होते हैं और ऐसी हिंसा को अन्जाम देने वाले अपराधी इस बात को भली भांति जानते हैं कि अधिकतर बच्चे या उनके परिवार वाले इस हिंसा का विरोध नहीं करेंगे।
- सरकार बच्चों की हिफ़ाज़त करने में पूरी तरह असफल रही है। परिवार और समुदाय भी बच्चों की हिफ़ाज़त करने में नाकामयाब रहे हैं। यहां तक कि वो संस्थान जिन्हें बच्चों कि सुरक्षा और देखरेख के लिए बनाया गया है, वो भी बच्चों की हिफ़ाज़त करने में नाकाम रहे हैं।
- ऐसे कई क़ानूनी प्रावधान, कार्यक्रम और सेवाएं हैं, जिनके ज़रिए हम बच्चों की हिफाज़त कर सकते हैं तथा उन्हें न्याय दिला सकते हैं। समस्या यह है कि उन्हें ठीक से लागू नहीं किया जाता। हमें इन क़ानूनों और कार्यक्रमों के बारे में जानना होगा और सरकार पर इनके कार्यान्वयन के लिए दबाव बनाना होगा।

आइये मिलजुल कर कोशिश करें

हम सब बच्चों को सुरक्षित देखना चाहते हैं। अगर हम एक साथ कोशिश करें तो ऐसा हो सकता है।

दिल्ली और देश के अलग-अलग हिस्सों में बच्चों के ख़िलाफ़ हो रही हिंसा की वारदातों के मद्देनज़र, दिल्ली के स्वयंसेवी संगठनों के समूह ने इस मुद्दे पर एकजुट होकर आवाज़ उठाने का फ़ैसला किया है। हम ये जानना चाहते है कि तमाम क़ानूनों और व्यवस्थाओं के बावजूद हम क्यों बच्चों की हिफ़ाज़त करने में नाकामयाब रहे हैं। हमारा मानना है कि 18 साल से कम हर लड़का और लड़की बच्चे हैं और हम सब बच्चों के ख़िलाफ़ होने वाली हर तरह की हिंसा की निंदा और विरोध करते हैं। हम मांग करते हैं कि राज्य बच्चों और बचपन की सलामती और हिफ़ाज़त के लिए उचित कदम उठाने की ज़रूरत को समझे, उसे तरजीह दे और उनकी हिफ़ाज़त सुनिश्चित करे। हम मांग करते हैं कि बच्चों की सुरक्षा के लिए सभी क़ानूनों का पूरी तरह से पालन हो, न्याय प्रक्रिया संवेदनशील हो और बिना देरी के न्याय मिले। साथ ही साथ हम ये भी मांग करते हैं कि पीड़ित बच्चों और गवाहों की सुरक्षा और सहायता के पुख्ता इंतजाम हों, गुनहगारों को सख्त से सख्त सज़ा दी जा सके और साथ ही साथ हिंसा के शिकार बच्चों के पुनर्वास की व्यवस्था भी हो सके।

यह अभियान दिल्ली के अलग-अलग कोनों में चलाया जा रहा है। हम आपसे गुज़ारिश करते हैं कि आप इस मुद्दे पर हमसे बातचीत करें, इस अभियान को आगे बढ़ाएं और मांग पत्र पर दस्तखत करके उसका समर्थन करें। हम इस मांग-पत्र को देश के नेताओं और सरकार के समाने रखेंगे और सुनिश्चित कराने की कोशिश करेंगे कि सरकार बच्चों की हिफ़ाज़त सुनिश्चित करे।

क्या आपको मालूम है

- सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार पुलिस को गुमशुदा बच्चों के बारे में एफ़.आई.आर. दर्ज करने के लिए **24** घंटे तक इंतज़ार करने की ज़रूरत नहीं है और न ही एफ़.आई.आर. से पहले प्रारंभिक जांच पड़ताल की ज़रूरत है। अगर पुलिसकर्मी फिर भी एफ़.आई.आर. दर्ज करने से इंकार करता है तो आप **011-23490209** पर संपर्क कर सकते हैं।
- हर पुलिस स्टेशन में एक ऐसा पुलिस **बाल कल्याण अधिकारी** होता है जिसका काम बच्चों से संबंधित सभी मामलों की कार्रवाई करना होता है।
- अगर आप बच्चों के साथ किसी भी तरह का दुराचार या हिंसा देखते हैं तो आप बच्चों की मदद के लिए बनी चाईल्ड लाइन **1098** पर फ़ोन कर सकते हैं, जो कि टोल फ्री नंबर है और जिसकी टीम बच्चों की मदद के लिए **24** घंटे तैयार रहती है।
- हर ज़िले में एक **बाल कल्याण समिति** की व्यवस्था की गई है। अगर आप बच्चों के साथ किसी भी तरह का दुराचार या हिंसा देखते हैं तो इनसे भी मदद मांग सकते हैं। बाल कल्याण समिति का पता और फ़ोन नंबर आप **1098** से ले सकते हैं।

संपर्कः किशोर झा
kishore.tdh@gmail.com

बच्चों की हिफ़ाज़त - हम सबकी ज़िम्मेदारी
दिल्ली बाल अधिकार समूह

संवाद

पुलिस की नज़र में बच्चे ही दोषी*

शिवम विज

नई दिल्ली, फरवरी 7, 2013 को जारी एक नई रिपोर्ट *ब्रेकिंग द साइलेंसः चाइल्ड सेक्शुअल अब्यूज़ इन इंडिया* में *ह्यूमन राइट्स वॉच* ने कहा कि भारत में घरों, विद्यालयों और रिहायशी देखभाल केंद्रों में बाल यौन शोषण सामान्य रूप से एक चिंताजनक समस्या है। नई दिल्ली में हुए हमले के बाद क़ानूनी और नीतिगत सुधारों के लिए सरकार द्वारा गठित समिति ने पाया है कि बाल संरक्षण योजनाएं "अपने उद्देश्य को पूरा करने में पूरी तरह से असफल रही हैं।"

यह रिपोर्ट यह पड़ताल करती है कि किस प्रकार वर्तमान सरकार की प्रतिक्रियाएं यौन दुर्व्यवहार से बाल संरक्षण और पीड़ितों के उपचार, दोनों दृष्टि से विफल रही हैं। *ह्यूमन राइट्स वॉच* के अनुसार इस समस्या से निपटने के लिए सरकार के सभी प्रयास विफल हो जाएंगे यदि सुरक्षा तंत्रों को सही ढंग से लागू नहीं किया गया। न्याय व्यवस्था में सुधार करना भी बेहद ज़रूरी है जिससे सभी यौन दुर्व्यवहारों की रिपोर्ट दर्ज की जाए और अपराधी को सज़ा मिले।

"बाल यौन उत्पीड़न का सामना करने में भारतीय व्यवस्था अक्षम है क्योंकि सरकारी तंत्र बच्चों को सुरक्षा देने में असफल रहा है," *ह्यूमन राइट्स वॉच* की दक्षिण एशिया निदेशक मीनाक्षी गांगुली कहती हैं, "पुलिस, चिकित्सकीय कर्मचारियों तथा अन्य अधिकारियों द्वारा बाल उत्पीड़न की शिकायत करने की हिम्मत दिखाने वाले बच्चों की अवहेलना और उपेक्षा की जाती है।"

इस रिपोर्ट में बाल यौन उत्पीड़न को रोकने और उससे निपटने के लिए सरकारी तंत्रों के निरीक्षण के लिए संख्यात्मक विश्लेषण के बजाय असल केस-कथाएं उपयोग की गई हैं।

ह्यूमन राइट्स वॉच का मानना है कि बाल यौन उत्पीड़न को संबोधित करना पूरी दुनिया के लिए एक चुनौती है, लेकिन भारत में राज्य और समुदाय स्तर पर प्रतिक्रिया की कमी इस समस्या को और बढ़ा देती है, पुलिस द्वारा शिकायत प्राप्त करने से लेकर सुनवाई पूरी होने तक, आपराधिक न्याय व्यवस्था की प्रक्रियाओं में सुधार लाने की ज़रूरत है। असंवेदनशील पुलिस अक्सर शिकायतें दर्ज करने से इंकार कर देती है और पीड़ित के साथ बेरुखी और अपमानजनक रवैया अपनाती हैं।

डॉक्टर और अधिकारी कहते हैं संवेदनशील चिकित्सा और जांच के लिए प्रशिक्षण और दिशानिर्देशों की कमी इस समस्या को और बढ़ा देते हैं। *ह्यूमन राइट्स वॉच* द्वारा दर्ज किए गए चारों मामलों में, बलात्कार की शिकार लड़कियों की जांच के लिए डॉक्टरों ने 'ऊंगली जांच' का फ़ोरेंसिक इस्तेमाल किया जबकि विशेषज्ञों का कहना कि इस जांच का कोई वैज्ञानिक महत्व नहीं है। एक उच्च स्तरीय सरकारी समिति ने इस पर रोक लगाने की मांग भी की है।

"यौन उत्पीड़न के शिकार बच्चों तथा उनके रिश्तेदारों के लिए इस सच का सामना करके मदद के लिए आना ही मुश्किल होता है, लेकिन इन मामलों पर संवेदनशीलता के साथ काम करने के बजाय भारतीय अधिकारी अक्सर उन्हें और ज़्यादा यातना देते हैं। "संवेदनशील व सहयोगात्मक पुलिस व्यवस्था हेतु पुलिस सुधारों को लागू करने की असफलता ने इन पीड़ितों के लिए पुलिस थानों को डरावनी जगह बना दिया है।"

"पुलिस ने तुरंत शिकायत दर्ज करने से इंकार कर दिया। मुझे उनका व्यवहार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा कि मैं खुद उन लड़कों के साथ जाना चाहती थी। जांच के दौरान मैंने डॉक्टर को बताया कि मेरे साथ मारपीट की गई थी, मुझे काटा और खरोंचा गया था पर उसने कहा कि कोई अंदरूनी चोट नहीं थी। मैं बेबस महसूस कर रही थी क्योंकि किसी ने भी मुझ पर विश्वास नहीं किया।" उम्र 16 वर्ष

* *ह्यूमन राइट्स वॉच द्वारा 7 फ़रवरी, 2013 को जारी की गई प्रेस विज्ञप्ति*

अनाथ तथा अन्य ख़तरों से घिरे बच्चों के साथ आवासीय देखभाल सुविधाओं में यौन उत्पीड़न एक गंभीर समस्या है। देश के अधिकांश हिस्सों में निरीक्षण तंत्र अपर्याप्त हैं। निजी तौर पर चलाई जाने वाली कई सुविधाओं का पंजीकरण भी नहीं किया जाता। फलस्वरूप, सरकार के पास न तो देश में चलाए जा रहे सभी अनाथालयों और अन्य संस्थानों का रिकॉर्ड होता है और न ही उनमें रहने वाले बच्चों की कोई जानकारी। यहां तक कि अच्छी तरह काम कर रहे और सम्मानित संस्थानों में भी खराब निगरानी तंत्र के कारण उत्पीड़न होते हैं। दिल्ली में सरकार द्वारा न्यायमूर्ति जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में गठित की गई समिति, ने यौन उत्पीड़न पर रोक लगाने के लिए कई सुझाव दिए और रिहायशी देखभाल संस्थानों में बच्चों की दशा पर चिंता व्यक्त की। बाल यौन उत्पीड़न के आरोपों को जांचने के बजाय, प्रबंधक इन शिकायतों को मानने से इंकार करते हैं। ऐसी ही एक सुविधा में उत्पीड़न की जांच के बाद आरोपों के बारे में, *राष्ट्रीय बाल अधिकार आयोग* के विनोद टिक्कू ने टिप्पणी की— "यह उपेक्षा नहीं है। यह एक व्यवस्थागत असफलता है।"

"चौंकाने वाली बात यह है कि अरक्षित बच्चों की सुरक्षा करने वाले संस्थान ही उन्हें यौनिक दुर्व्यवहार के बड़े खतरे में डालते हैं," गांगुली ने कहा। "राज्य सरकारों को सरकारी, निजी या धार्मिक बाल कल्याण संस्थानों के पंजीकरण और निगरानी के लिए एक प्रभावशाली तंत्र लागू करना चाहिए।"

ह्यूमन राइट्स वॉच ने *यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण कानून 2012* का स्वागत किया है। उनका मानना है कि इस क़ानून को लाकर, भारत सरकार ने देश में बच्चों के साथ होने वाले यौन उत्पीड़नों को स्वीकारने और उन पर रोक लगाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है। इस क़ानून के तहत, बच्चों के साथ होने वाले सभी प्रकार के यौनिक दुर्व्यवहारों को पहली बार विशिष्ट अपराध माना गया है। यह क़ानून पुलिस तथा अदालतों के लिए भी आवश्यक दिशानिर्देश स्थापित करता है ताकि वे पीड़ितों के साथ संवदेनशील तरीके से निपटें और विशिष्ट बाल अदालतें भी गठित की जा सकें।

"जब मैं थाने गई तो थानेदार ने मुझसे पूछताछ की...मुझे पुलिस स्टेशन में ताले में बंद रखा गया। वे मुझ पर दबाव डाल रहे थे कि मैं अपना बयान बदल दूं वरना मुझे कुछ भी हो सकता है... उस समय के बारे में सोचती हूं तो डर जाती हूं।" उम्र 12 वर्ष

अब सरकार को यह सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि 'पाक्सो' क़ानून तथा अन्य प्रासंगिक क़ानूनों व नीतियों का सही क्रियान्वयन हो ताकि एक निगरानीपूर्ण सुरक्षा तंत्र तैयार किया जा सके। *ह्यूमन राइट्स वॉच* के अनुसार यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि बच्चों के साथ अक्सर यौन उत्पीड़न उनके परिचित व्यक्तियों द्वारा किया जाता है जैसे बुर्जुग संबंधी, पड़ोसी, स्कूल कर्मचारी या रिहायशी देखभाल सुविधाओं के कर्मचारी और बड़े बच्चे। देश के बच्चों के हित को ध्यान में रखते हुए बाल संरक्षण योजना, किशोर न्याय अधिनियम तथा स्वायत्त बाल अधिकार आयोग का गठन एक कड़ी चुनौती है।

भारत सरकार को बाल कल्याण अधिकारी, बच्चों के रिहायशी देखभाल संस्थानों के प्रबंधन व स्कूल अधिकारियों, पुलिस, डॉक्टर, अदालती अधिकारी, सरकारी या निजी सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए प्रशिक्षण मुहैय्या कराने चाहिए ताकि यह निश्चित किया जा सके कि वे बाल उत्पीड़न पर कारगर कदम उठा सके। सरकारी संस्थानों के प्रति अविश्वास को दूर करने के लिए भी सरकार को आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

भारत बच्चों को सुरक्षा प्रदान करने वाले मूल अंतराष्ट्रीय मानव अधिकार समझौतों जिसमें *नागरिक और राजनैतिक अधिकार पर अंतर्राष्ट्रीय अनुबंध, बाल अधिकार समझौता, महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव उन्मूलन समझौता (सीडॉ)* भी शामिल है, का पक्षधर है। ये संधियां सभी स्तरों पर राज्य सरकारों को ज़िम्मेदारी सौंपती हैं कि वे बच्चों बाल यौन हिंसा और उत्पीड़न को सुरक्षा के उपाय करें, और मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने पर उचित कार्रवाई करें। राज्य आई.सी.सी.पी.आर., उत्पीड़क राजकीय कार्रवाइयों तथा निजी पक्षों द्वारा दुर्व्यवहार से प्रभावी ढंग से निपटने की ज़िम्मेदारी भी राज्य पर सौंपता है।

गांगुली के अनुसार "भारत सरकार ने उच्चतम स्तरों पर यह माना है कि यौन उत्पीड़न से देश के बच्चों को बचाने के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। पर अभी भी भेदभाव, पक्षपात और घोर असंवेदनशीलता को सम्बोधित करने के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे।" "जैसा कि कई अधिकारियों ने हमें कहा है कि नए क़ानून या प्रशिक्षण मुहैय्या कराना एक महत्वपूर्ण उपाय हो सकता है, परन्तु इसके साथ सक्रिय कार्रवाई भी आवश्यक है। साथ ही मानसिकताओं में बदलाव लाना भी ज़रूरी है जिसके रहते उत्पीड़क और संरक्षक, दोनों से ही से अपनी ज़िम्मेदारी ठीक से न निभाने पर जवाबदेही मांगी जा सके।"

साभारः काफ़िला, फरवरी 7, 2013 अंग्रेज़ी से अनूदित।

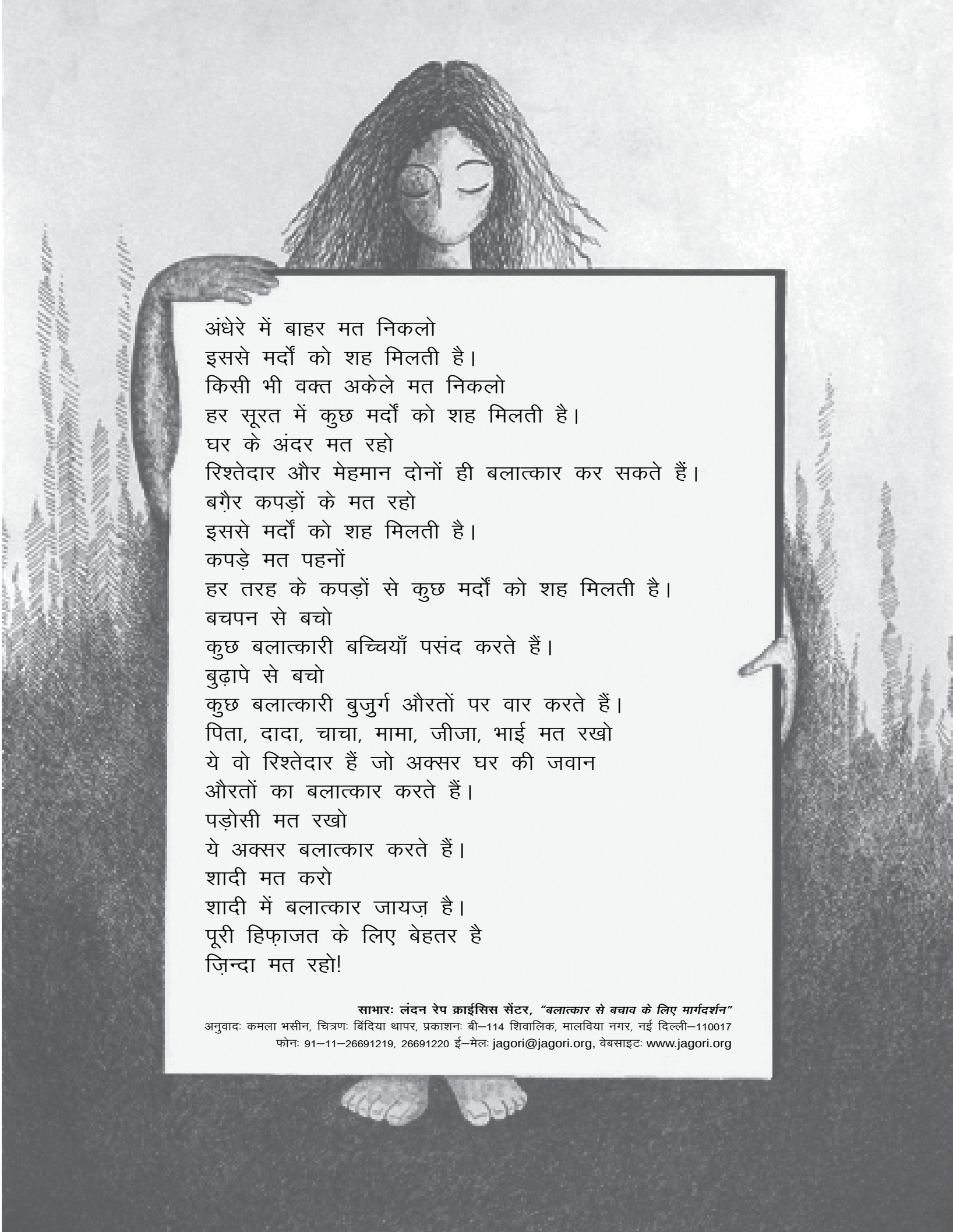

अंधेरे में बाहर मत निकलो
इससे मर्दों को शह मिलती है।
किसी भी वक्त अकेले मत निकलो
हर सूरत में कुछ मर्दों को शह मिलती है।
घर के अंदर मत रहो
रिश्तेदार और मेहमान दोनों ही बलात्कार कर सकते हैं।
बग़ैर कपड़ों के मत रहो
इससे मर्दों को शह मिलती है।
कपड़े मत पहनों
हर तरह के कपड़ों से कुछ मर्दों को शह मिलती है।
बचपन से बचो
कुछ बलात्कारी बच्चियाँ पसंद करते हैं।
बुढ़ापे से बचो
कुछ बलात्कारी बुजुर्ग औरतों पर वार करते हैं।
पिता, दादा, चाचा, मामा, जीजा, भाई मत रखो
ये वो रिश्तेदार हैं जो अक्सर घर की जवान
औरतों का बलात्कार करते हैं।
पड़ोसी मत रखो
ये अक्सर बलात्कार करते हैं।
शादी मत करो
शादी में बलात्कार जायज़ है।
पूरी हिफ़ाजत के लिए बेहतर है
ज़िन्दा मत रहो!

साभारः लंदन रेप क्राईसिस सेंटर, *"बलात्कार से बचाव के लिए मार्गदर्शन"*
अनुवादः कमला भसीन, चित्रणः बिंदिया थापर, प्रकाशनः बी–114 शिवालिक, मालविया नगर, नई दिल्ली–110017
फोनः 91–11–26691219, 26691220 ई–मेलः jagori@jagori.org, वेबसाइटः www.jagori.org